जग
का
मुजरा
यशपाल

जग का मुजरा

वैयक्तिक और पारिवारिक प्रश्नों पर
सामाजिक और राष्ट्रीय दृष्टि

यशपाल

विप्लव कार्यालय, लखनऊ

समर्पण

समझ झरोखे बैठके
जग का मुजरा देख ।
कथनी, करनी तोल के
मन का मोहरा टेक ।

यशपाल

प्रसंग

भूमिका

इन कथा-चित्रों में चर्चा का विषय वही कठिनाइयां हैं, जिनका हम ने समय-समय पर सुव्यवस्था और विकास के प्रयोजन से स्वयं निर्माण किया है। आज उनके बोझ से असमर्थता और असुविधा अनुभव हो रही है।

यथार्थ की दृष्टि से मनुष्य द्वारा स्वयं निर्मित कठिनाइयों का विश्लेषण, समाज के लिये रोचक और उपादेय भी होना चाहिये।

आशा है, प्रस्तुत सामाजिक चित्र और व्यंग की शैली पाठकों को सार्थक जान पड़ेगी।

महानगर, लखनऊ
जून, १९६२

यशपाल

पुरइन में पानी

श्री 'क्ष' का उपनाम 'यथार्थ' पड़ गया है। कारण यह नहीं कि उन के व्यवहार और दृष्टिकोण में पार्थिवता अथवा ठोस भौतिक प्रवृत्ति है, बात कुछ उल्टी है। 'क्ष' बात-बात में यथार्थ की दुहाई अवश्य देते हैं परन्तु वे गुफ्तार के गाजी हैं यानी वाक्-वीर हैं। बातों में ही वे सफलता पाते हैं।

सिद्धांत को जीवन में निबाहता कौन है ? सिद्धांत तो केवल वाणी से स्वीकार कर लिया जाता है और उसकी दुहाई दी जाती है। जनता की वाणी की उपेक्षा करने वाली सरकार 'जनवादी' कहलाती है। धन-ऐश्वर्य और शक्ति के संचय को ही जीवन का लक्ष्य मानने वाले दरिद्रनारायण के पुजारी ईसा और गांधी के भक्त होने का दम भरते हैं। समाज की गर्दन पर सवार होकर, अपने अंकुश से समाज के हाथी को मनचाही दिशा में चलाने वाले लोग 'समाजवादी' हो सकते हैं तो 'क्ष' बिना कभी कोई यथार्थ सिद्ध किये 'यथार्थवाद' का समर्थन क्यों नहीं कर सकते !

श्री यथार्थ का मकान नगर में ऐसी जगह है कि आते-जाते राह में पड़ जाता है। मकान में भीतर, यथार्थ में विशेष साधन न होने पर भी सामने खुला आंगन और चौड़ा बराम्दा है। बैठकर बातचीत, विवाद के चकल्लस में समय बिता सकने की सुविधा है इसलिये प्रायः अवकाश के समय उन के यहां बैठक जम जाती है। वहां सर्वोदयी, कलाकार और साहित्यक आते हैं, साम्यवादी भी आ बैठते हैं। श्रीमती यथार्थ अंग्रेजी पढ़ी हैं इसलिये उन्हें पुरुषों में बैठ कर बात करने में संकोच नहीं होता। श्रीमती यथार्थ की उपस्थिति से उत्साहित होकर कभी-कभी पड़ीस से एक-आध आधुनिक महिला भी आ जाती है। इस बैठक में लोगों के वास्तविक नामों का नहीं, यथार्थ के अनुकरण में उन के गुणवाचक नामों का अथवा उपनामों का ही प्रयोग होता है। उदाहरणतः—श्री सर्वोदय,

श्री साम्य, श्री कलाधर, श्री कानूनी आदि आदि । एक प्रकार का क्लब समझिये जिस का कोई चन्दा नहीं और नाम भी नहीं ।

यथार्थ के पड़ोसी लाला का नवयुवक पुत्र एक ओहदे के लिये कम्पीटीशन की परीक्षा में उत्तीर्ण हो कर भी सेलेक्शन में सफल नहीं हुआ । लाला निराशा से खिन्न थे । अपने भाग्य को, व्यवस्था में धांधली को और पक्षपात को कोस रहे थे । लाला के मन की अशान्ति किसी प्रकार दूर नहीं हो रही थी; नींद और भूख दोनों ही जाती रहीं ।

श्री सर्वोदय ने लाला को सहानुभूति से समझाया—"भैया बुरा न मानना, चिंता और क्षोभ का कारण तो तुम्हारे मन में है । तुम्हें चिंता यह नहीं है कि तुम्हारे पुत्र को कर्म और सेवा का अवसर नहीं मिल सकता । जो सेवा और कर्म करना चाहता है, उसे कोई बाधा नहीं हो सकती । तुम्हें क्षोभ इसलिये है कि पुत्र को फल पाने का, प्रतिष्ठा और धन पाने का अवसर नहीं मिल रहा है । यदि मन से फल के मोह को दूर कर सको तो मन में क्षोभ भी न हो । सांसारिक लोभ ही दुख का कारण है । लोभ की सीमा नहीं इसलिये दुख की भी सीमा नहीं है ।"

लाला सर्वोदय जी की ज्ञान-गंभीर बात सुन कर आंख और मुंह फैलाये देखते रह गये । यथार्थ कुछ कहना चाहते थे परन्तु साम्य ने सर्वोदय से पूछ लिया—"महात्मा जी, सांसारिक लोभ से क्या अभिप्राय ? जीवन-रक्षा और निर्वाह के लिये प्रयत्न के फल की आशा को भी आप लोभ कह देंगे तो काम कैसे चलेगा ?"

सर्वोदय जी मुस्करा दिये—"जीवन की रक्षा और निर्वाह के लिये 'उस' पर भरोसा करो !" सर्वोदय जी ने तर्जनी से आकाश की ओर संकेत किया, "निर्वाह तो एक मुट्ठी अन्न और दो हाथ कपड़े से हो सकता है···।"

यथार्थ ने टोक दिया—"महात्मा जी, शरीर में प्राण बने रहना ही मानव जीवन नहीं कहा जा सकता । मानव जीवन तो चेतना और प्रयत्न से जीवन को समर्थ और सार्थक बना सकने में है ।"

सर्वोदय जी के ओंठ वितृष्णा से बिचक गये—"मानव की चेतना और प्रयत्न क्या लोभ और अहिंसा के संघर्ष में फंसे रहने में ही हैं ? पहले आई० ए० एस०

का ऊंचा ओहदा पाने की इच्छा से मन को व्याकुल करो, फिर पद-वृद्धि की इच्छा से बेचैन रहो, तिस पर भी देखोगे कि अभी संसार में तुम से बहुत बड़े-बड़े हैं। उन से स्पर्धा और ईर्ष्या करोगे। इस से भी संतोष न मिल सकेगा। संतोष तो स्वयं कुछ न चाह कर दूसरों की सेवा करने में है।"

यथार्थ भी मुस्कराये—"महात्मा जी, दूसरों की सेवा कर सकने की इच्छा भी तो एक प्रकार की इच्छा ही है। इच्छा-मुक्त तो आप तब भी नहीं हुये। गांधी जी अपने निधन से पूर्व पाकिस्तान जाकर पाकिस्तानी भाइयों की सेवा करना चाहते थे परन्तु पाकिस्तानियों ने उन्हें सेवा का अवसर देना स्वीकार नहीं किया। क्या गांधी जी ने पाकिस्तानियों की रुखाई से निराशा अनुभव न की होगी ?"

साम्य ने हाथ उठा कर पूछा—"हम जानना चाहते हैं कि पर-सेवा और लोक-सेवा की इच्छा से अभिप्राय क्या है ? क्या आप चाहते हैं दूसरे लोग कष्ट में रहें, आपकी सेवा के मोहताज बने रहें ? आपके जीवन का उद्देश्य दीनों की सेवा हो और दीनों के जीवन का उद्देश्य आपको सेवा का पुण्य कमाने का अवसर देना रहे ! पर-सेवा से अपने जीवन को सफल बनाने के उद्देश्य की पूर्ति के लिये ही आप ऐसी व्यवस्था का समर्थन करेंगे जिससे समाज में दीन बने रहें, जैसे राजा प्रजा पर अपने शोषण का अंकुश जमा कर प्रजापालक होने का दम्भ करता था। मानव को मानव से दया और सेवा नहीं चाहिये, 'स्वत्व' चाहिये।"

सर्वोदय जी अपनी बात की ऐसी विरोध और हिंसापूर्ण व्याख्या सुन गंभीर हो गये।

कलाधर विस्मय से आंखें फैला कर बोल पड़े—"मानव को मानव से सेवा नहीं चाहिये, क्या कहते हो ? शिशु को माता से सेवा नहीं चाहिये, माता को वृद्धावस्था में पुत्र से सेवा नहीं चाहिये और पुरुष को नारी की कोमल भावनाओं का प्रश्रय और आधार नहीं चाहिये !"

श्रीमती कलाधर बोल पड़ीं—वाह, यदि जीवन से सेवा का माधुर्य समाप्त हो जाय तो जीवन बिल्कुल स्वार्थ पर और पाशविक हो जायेगा।"

यथार्थ साम्य की बात का ऐसा अभिप्राय निकाले जाने से विचारपूर्ण मुद्रा में बोले—"यह यथार्थ की विडम्बना है। जिन सेवाओं की बात आप कर रहे हैं, वह परलोक भावना से नहीं, दैन्य से भी नहीं, अपने जीवन की पूर्णता और संतोष के लिये अपने स्वत्व से की जाती हैं !"

सर्वोदय जी अपनी उत्तेजना को दबा कर बोले—"स्वत्व ! स्वत्व ! ! स्वत्व ! ! ! स्वत्व का लोभ, स्वत्व का अहंकार और स्वत्व का प्रमाद यही तो सब दुःखों का मूल हैं। यह मेरा है, यह मैं करता हूं, मुझे करना चाहिये; यही तो सब से बड़ा अज्ञान है।"

"सत्य है, सत्य है।" लाला ने सर्वोदय जी से परम्परागत सत्य-ज्ञान सुन कर प्रसंशा में समर्थन किया, "गीता में भी तो यही कहा गया है।"

साम्य बोले—"गीता में क्या कहा है ? आप के पुत्र के साथ जो अन्याय हुआ है, उसे चुपचाप सह लेना चाहिये ? क्या गीता कहती है कि मनुष्य भावना शून्य हो जाये और अपने मानवीय अधिकारों की, न्याय-अन्याय की बात न सोचे और निष्क्रिय हो जाये ?"

सर्वोदय जी ने विस्मय प्रकट किया—"गीता निष्क्रियता का नहीं कर्मण्यता का उपदेश देती है। गीता से बड़ा कर्मयोग कौन है ! गीता तो कर्म का ही उपदेश देती है। गीता फल के मोह में न फंसने की चेतावनी देती है—'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्' (मनुष्य को कर्त्तव्य समझ कर कर्म करना चाहिये फल में आसक्ति नहीं होनी चाहिये)।"

यथार्थ भी आगे खिसक कर बोल पड़े—"मनुष्य को कर्म करने का ही अधिकार है। वह कर्म करने में ही स्वतंत्र है। अपने कर्म के फल पर उस का अधिकार नहीं। वह अपने कर्म का फल पाने का यत्न न करे, इस सिद्धांत या उपदेश का व्यवहारिक अर्थ क्या हुआ ? क्या यह समझा जाना चाहिये कि लाला के पुत्र को नौकरी के कम्पटीशन की तैयारी करने का अधिकार था परन्तु पास हो जाने पर भी नियुक्ति हो जाने या नौकरी पा सकने का अधिकार नहीं ?"

साम्य और भी अधिक ऊंचे स्वर में बोले—"नहीं साहब, इन के विचार में गीता के उपदेश का अर्थ है कि कर्मकारों, उत्पादन के लिये श्रम करने वाले श्रमिकों का कर्त्तव्य केवल जान लड़ा कर अधिक से अधिक उत्पादन करते जाना है, अपने श्रम का फल, पैदावार या मज़दूरी मांगने का अधिकार उन्हें नहीं है ! फल पर साधनों के स्वामियों, मालिक लोगों का ही अधिकार है। काम और श्रम करने वालों का धर्म फल की उपेक्षा कर शान्ति, संतोष और अहिंसा से शोषण सहते जाना ही है।"

"हो ! हो !" कलाधर जी साम्य की बात को उपहास में उड़ा देने के लिये बोले, "वाह साहब, क्या कहने ! आप ने गीता में भी पूंजीवादी शोषण का

समर्थन ढूंढ़ निकाला। आप के ख्याल में कृष्ण भगवान भी बड़े भारी पूंजीपति थे। उस समय पूंजीवाद था ही कहां जिस का समर्थन गीता ने किया ? यह आप की भावना का प्रतिबिम्ब मात्र है।"

साम्य कलाधर की बात से झेंपे नहीं, बोल पड़े—"शोषण, दूसरे के फल को हथियाने की प्रवृत्ति, केवल पूंजीवाद का ही आविष्कार नहीं है कलाधर जी ! यह तो साधनों पर स्वामित्व जमाकर दूसरों के श्रम का फल बटोरने की बर्बर इच्छा का परिणाम है। साधनों या भूमि के स्वामित्व के लिये ही तो कौरव-पांडव लड़ मरे। दोनों ही किसानों से मालगुज़ारी बटोर कर ऐश करना चाहते होंगे। पांडव बेचारे दस-पन्द्रह गांवों की जमींदारी से संतुष्ट हो जाने के लिये तैयार थे परन्तु दुर्योधन उन्हें एक उंगली भर ज़मीन देने के लिये भी राजी नहीं हुआ। उस के लोभ का अन्त नहीं था।"

सर्वोदय जी मुस्करा दिये—"भूमि के लिये उस लोभ का परिणाम क्या हुआ—हिंसा ! और हिंसा से सर्वनाश !"

यथार्थ चिंता की मुद्रा में भवें उठा कर बोले—"महात्मा जी, क्षमा कीजिये वह हिंसा करायी थी स्वयं भगवान ने ही।"

कलाधर ने टोक दिया—"भगवान ने हिंसा नहीं करायी थी। भगवान ने तो कौरवों को हिंसा करने से रोका था।"

साम्य उछल पड़े—"हम भी इस युग के कौरवों को हिंसा करने से रोकना चाहते हैं।"

कलाधर हंस दिये—"वाह ! वाह ! असली कृष्ण-भक्त तो तुम्हीं हो !"

यथार्थ अपनी बात पूरी करने के लिये बोले—"लोभ का अर्थ क्या है ? अपने श्रम के फल की इच्छा को लोभ नहीं कहा जा सकता। महात्मा जी, आंधी पानी और धूप से बचने के लिये मकान बनाना लोभ नहीं है, किराये के लिये मकान बनाना ही लोभ है। यथार्थ में लोभ तो दूसरे के श्रम के फल की इच्छा को ही कहना चाहिये। अपने श्रम के फल अथवा स्वत्व के लिये प्रयत्न, अथवा न्याय के लिये संघर्ष को लोभ या हिंसा नहीं कहा जा सकता।"

सर्वोदय जी ने समझाया—"कर्म के फल को अपना समझना, उस लोभ को अधिकार और न्याय समझ बैठना ही तो आसक्ति और मोह है। जहां आसक्ति हुई, वहां अहंकार, हिंसा और दुख आरम्भ हो गये।"

साम्य खिन्नता से बोल उठे—"मनुष्य संसार से आशा, अपना सम्बन्ध और

लगाव अनुभव नहीं करेगा तो कर्म की प्रेरणा कहां से पायेगा ?"

यथार्थ बोले—"भाई, कर्म तो फल के लिये ही किया जाता है। कर्म का विचार किसी फल के लिये ही होता है। मनुष्य ही नहीं, जीव-जन्तु भी किसी न किसी प्रयोजन से या फल के लक्ष्य के लिये ही कर्म या श्रम करते हैं। संस्कृत में पुरानी व्यवहारिक उक्ति है—'प्रयोजनमनुद्दिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्तते' (प्रयोजन के बिना अथवा फल को ध्यान में रखे बिना विचारहीन जीव भी श्रम नहीं करता) भगवान कृष्ण भी इस उक्ति को जानते थे। उन्होंने फल की उपेक्षा करने का उपदेश नहीं दिया।" उन्होंने लाला और कलाधर की ओर देखा, "गीता का यह उपदेश नहीं है कि 'श्रम कर और कुएं में डाल'। गीता के उपदेश का अर्थ है—असफलता और कष्ट की आशंका से निरुत्साहित न होकर, अन्यायी का लिहाज और भय न करके जो कर्त्तव्य न्याय और अधिकार है, उस से पीछे न हटो। सदा उसके लिये प्रयत्न करने में सन्तोष समझो। कृष्ण के समझाने से अर्जुन ने यही तो किया !"

लाला ने गर्दन हिला कर स्वीकार किया—"हां, यह भी ठीक है।"

सर्वोदय जी ने यथार्थ की बात जमते देख कर चेतावनी में तर्जनी उठा दी—"कर्म जरूर करो परन्तु अनासक्त रह कर…।"

यथार्थ ने टोक दिया—"आप तो फिर वही बात कह रहे हैं—कर्म करो, फल के विचार के बिना।"

सर्वोदय जी उन की बात अनसुनी कर कहते चले गये—"मनुष्य को संसार में इस प्रकार रहना चाहिये जैसे पद्मपत्रमिवाम्भसी !"

श्रीमती कलाधर और लाला ने संस्कृत का वाक्य न समझ सकने के कारण प्रभावित होकर जिज्ञासा से सर्वोदय जी की ओर देखा।

सर्वोदय जी ने गंभीर ज्ञान की व्यवस्था करने के लिये दोनों हाथ फैलाकर बताया—"ज्ञानी लोगों का उपदेश है कि मनुष्य को इस संसार में इस प्रकार रहना चाहिये जैसे जल में कमल रहता है। कमल जल में रहता है परन्तु वह जल से भीगता नहीं।" सर्वोदय जी तत्व की बात कह कर संतोष से मुस्करा दिये।

श्रीमती कलाधर और लाला तत्व की बात सुन कर ज्ञान-मुग्ध हो गये। कलाधर जी ने सराहना में सिर हिला कर कहा—"वाह ! वाह ! क्या सुन्दर उपमा है ?"

साम्य बोल उठे—"हां, हां ! आप का मतलब है पानी में पुरइन ?"

कलाधर जी प्रसन्न हो गये—"वाह ! साथी वाह !" उन्होंने साम्य की पीठ ठोक दी, "तुम भी कविता करने लगे। मित्र, तुमने तो गागर में सागर को भर दिया है। पूरा भाव आ गया दो शब्दों में और अनुप्रास भी।" उन्होंने रस लेकर दोहराया, "पानी में पुरइन !" और बोले, "आध्यात्म का इस से सुन्दर काव्यमय रूपक क्या हो सकता है ?…पानी में पुरइन।"

यथार्थ ने समझने के प्रयत्न में गर्दन हिलायी। मुंह से निकल गया—"पानी में पुरइन हां उपमा बहुत सुन्दर है और यथार्थ भी है। महात्मा जी, पुरइन अर्थात् कमल जल में रहता है और जल से भीगता भी नहीं, यह सच है परन्तु कमल को जल से निकाल लीजिये तो दो पल में ही कमल की सम्पूर्ण शोभा समाप्त हो जायगी। यथार्थ बात कह रहा हूं लाला जी !" उन्होंने पड़ोसी की ओर देखा।

लाला ने गर्दन के संकेत से स्वीकार किया—"हां, यह भी ठीक है, जल से निकला कमल तुरंत मुरझा जाता है।"

यथार्थ समर्थन पाकर बोले—"ऐसे ही संसार के जल में कमल की तरह रहने वाले ज्ञानियों और महात्माओं को समाज न पाले-पोसे तो वे दो दिन में सूख जांय।"

साम्य बहुत जोर से कहकहा लगा कर हंस पड़े—"वाह भाई, वाह कलाधर जी, वास्तव में ज्ञानियों-त्यागियों की उपमा जल में कमल से ठीक ही है।"

यथार्थ ने सुनने का संकेत किया और बोले—"कमल जल में बिना भीगे रहता है परन्तु कलाधर जी, उसके रोम-रोम में जल ही समाया रहता है। वह जल से ही जीवित रह कर जल को हेय समझने, उसे न छूने का अहंकार करता है। कलाधर जी, कमल गर्व से अपना सिर जल से ऊपर उठाये रहता है परन्तु उसकी जड़ होती है कीचड़ में—जल के मल और मिट्टी में ! ऐसे ही संसार से वैराग्य रखने वाले महात्माओं को भी, समाज में पाप करने वाला कीचड़ ही अपने पाप क्षमा करा लेने की आशा में पालता-पोसता है।"

"वाह ! वाह ! यही है संसार की माया से वैराग्य की वास्तविकता…" साम्य उल्लास से उछल पड़े।

सर्वोदय जी के चेहरे पर विरोध की गंभीरता छा गई। साम्य उनके असंतोष की परवाह न कर बोलते चले गये—"समाज के श्रम के फल पर जीवित रह कर

समाज से अनासक्त और असम्बद्ध रहने से बढ़ कर स्वार्थ, निर्लज्जता और दम्भ क्या हो सकता है ? कमल तो शोषकों का प्रतीक है।"

साम्य की बात से कलाधर के माथे पर बल पड़ गये—"तुम साम्यवादियों के लिये तो संसार में जो कुछ सुन्दर है, शोषण ही है। समाज को समाप्त कर दो, कला को समाप्त कर दो, सौन्दर्य को समाप्त कर दो ! फूलों को समाप्त कर दो, कांटे बो दो !"

यथार्थ गोष्ठी में कड़वापन आ जाने से घबराकर बोले—"नहीं, सौंदर्य को क्यों समाप्त किया जाय ! 'पानी में पुरइन न सही, 'पुरइन में पानी' ही हो तो क्या हर्ज है ?"

कलाधर जी ने भवें चढ़ा कर पूछा—"परम्परागत सूक्ति को, मुहावरे को बिगाड़ने से क्या लाभ ?"

सर्वोदय जी बड़ी सहनशीलता से मुस्कराये—"विरोध की भावना हो तो विरोध ही लक्ष्य बन जाता है।"

यथार्थ ने सुनने के लिये अनुरोध के संकेत में हाथ उठा कर कहा—"सुनिये तो—'पुराणमित्येव न साधु सर्वम्'—कोई बात पुरानी या परम्परागत होने से ही सदा ठीक नहीं मानी जा सकती। बताइये, पुरइन में पानी क्या कम सुन्दर लगता है ? पुरइन पर पानी की बूंदे मोती बन जाती हैं और वह बूंदे अनासक्त और अलग-थलग भी रहती हैं। जल की बूंद का मोती दिखाई देने का अहंकार भी मिथ्या नहीं है क्योंकि जल ही पुरइन को उत्पन्न करता है, मोती को भी जल ही उत्पन्न करता है और अहंकार भी नहीं करता। संसार से अनासक्ति हो तो ऐसी हो कि संसार और समाज की उपेक्षा न करे, संसार और समाज को अपने अस्तित्व से पुष्ट करें।" यथार्थ ने साम्य को सम्बोधन किया, "क्यों साम्य जी !"

साम्य ने संतोष से स्वीकार किया—"पुरइन में पानी—यही तो जनवादी और समाजवादी दृष्टिकोण है।"

अंग्रेज़ी तोते

तप्पी—तपेश्वर बाजपेयी, इन्स्टीट्यूट से लौटते समय कुछ देर काफी-चौपाल में बैठ लेता है। काफी का प्याला तो बहाना है। काफी तो इन्स्टीट्यूट की केंटीन में भी मिल सकती है। काफी चौपाल में खींच लाती है, बतरसलालच। तप्पी को ही क्या दोष दें, बिहारी कह गये हैं—'बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय।' राधा भी बतरस के लालच का दमन नहीं कर सकती थी।

तप्पी ने काफी चौपाल में कदम रख, पहले से बैठे बहसियों के लिये नज़र दौड़ाई।

अंग्रेज़ी दैनिक के संवाददाता नायर ने हाथ उठा कर तप्पी को संकेत से बुला लिया। नायर के साथ तप्पी के दूसरे परिचित भी बैठे थे—यूनीवर्सिटी का नवजवान लेक्चरार देव और उस का समवयस्क बनर्जी भी थे। बनर्जी अपनी वकालत जमा पाने के प्रयोजन से बहस करने की सामर्थ्य बढ़ाता रहता है।

तप्पी ने खाली कुर्सी पर आसन जमाते हुए नायर को सम्बोधन किया—"हल्लो नारद मुनी, आज क्या खबर छाप रहे हो ?"

संतान की राशि का विचार करके पिता-माता का बहुत प्यार से रखा हुआ नाम तो केवल दस्तखत करने के लिये ही रह जाता है और गुण, कर्म, स्वभाव के प्रभाव से परिचितों द्वारा दिया नाम अधिक प्रसिद्ध हो जाता है। नायर, नारद मुनी सम्बोधन किये जाने से चिढ़ता नहीं। यह बात सुन कर वह दूसरों को बात की टंगड़ी लगा कर लड़खड़ा देना अपना अधिकार समझ लेता है।

नायर ने देव की ओर कटाक्ष किया—"हिन्दी वाले से कह रहा था, हमने हिन्दी टाईप राइटर में फिजूल पैसे बरबाद किये। प्रेसीडेंट ने डाइरेक्टिव (आदेश) दे दिया है, हिन्दी तो दस साल के लिये गयी। तब तक तो हमारे

टाईप राइटर को जंग लग जायेगा। तुम्हें भी फिलहाल 'रालफिया सर्पन्टीना' की जगह 'सर्पगंधा' याद करने की जरूरत नहीं। यह हिन्दी वाला कल तुम्हें लेटिन पारिभाषिक शब्दों के स्थान पर संस्कृत के शब्द लिखा रहा था।"

बनर्जी बोल पड़ा—"भाई, ये हिन्दी वाले बहुत संकीर्ण विचार हैं। आखिर तो हिन्दी चूल्हे-चौके, छुआ-छूत मानने वाले प्रदेश की भाषा है। संकीर्णता उनका स्वभाव है। ये लोग अपवित्रता के भय के कारण देश-विदेश के वैज्ञानिक विकास और सम्पर्कों से दूर रहना चाहते हैं। प्रधानमंत्री का कहना बिल्कुल ठीक है—हिन्दी वालों की असहिष्णुता ही हिन्दी को पीछे हटा रही है।"

देव ने बनर्जी को घूर कर पूछा—"असहिष्णुता नहीं तो क्या है? राष्ट्र के अधिकांश लोगों को अंग्रेज़ी को केन्द्रीय भाषा बनाये रखने में सुविधा है तो हिन्दी वाले हिन्दी को केन्द्रीय भाषा बनाने का आग्रह क्यों करते हैं? जिस भाषा से शासन और शिक्षा का काम नहीं चल सकता उसके प्रति भावुकता से क्या लाभ?"

तप्पी ने कुर्सी से उचक कर पूछा—"कौन कहता है अधिकांश लोगों को अंग्रेज़ी से सुविधा है और अधिकांश जनता अंग्रेज़ी को केन्द्रीय भाषा बनाये रखने के पक्ष में है?"

"बिल्कुल प्रत्यक्ष है" नायर ने उत्तर दिया, "जनमत के कारण ही सरकार को हिन्दी स्थगित करनी पड़ी है। राष्ट्रपति को इसीलिये अंग्रेज़ी कायम रखने का आदेश देना पड़ा है।"

तप्पी और आगे झुका—"तुम्हारा मतलब है कि देश के अधिकांश लोग अंग्रेज़ी जानते हैं?"

नायर ने इन्कार किया—"यह मैंने कब कहा कि अधिकांश लोग अंग्रेज़ी जानते हैं……।"

तप्पी उसकी बात दबा देने के लिये ऊँचे स्वर में बोला—"जो लोग अंग्रेज़ी नहीं जानते वे भी अंग्रेज़ी केन्द्रीय भाषा रहने में सुविधा अनुभव करते हैं? वे चाहते हैं कि शासन ऐसी भाषा में हो जिसे वे न समझते हों? तुम्हें मालूम है, जनगणना की रिपोर्ट के अनुसार देश में सबसे अधिक अंग्रेज़ी जानने वाले केरल में हैं और जनाब, केरल में अंग्रेज़ी पढ़े दो प्रतिशत हैं। इन अंग्रेज़ीदां लोगों में वह लोग भी सम्मिलित हैं जिन्होंने अंग्रेजी की एक रीडर पढ़ ली है पर अंग्रेजी का न एक वाक्य बोल सकते हैं, न पढ़ सकते हैं। स्पष्ट है, देश में

दो प्रतिशत से अधिक लोग अंग्रेजी से सुविधा अनुभव नहीं कर सकते ।"

देव बोल पड़ा—"उन दो प्रतिशत में से भी सब लोग अंग्रेजी के पक्ष में नहीं हैं। अनेक राजनीतिक दलों के केवल अंग्रेजी जानने वाले लीडरों, देश की नौकरशाही और अंग्रेज़ी अखबारों की जुबानें बहुत लम्बी हैं। ये लोग जनमत का जैसा चाहें बवंडर खड़ा कर सकते हैं। देश की जनता का बहुमत अंग्रेज़ी के पक्ष में है, इस से बड़ा झूठ और क्या हो सकता है ?"

"तो आप सब पर हिन्दी लादेंगे ?" बनर्जी ने आंखें चमकाकर पूछा।

देव ने भी उसे घूर कर उत्तर दिया—"हम तो किसी पर कोई भाषा लादने के पक्ष में नहीं हैं परन्तु आप दस-पन्द्रह बरस तक सब प्रदेशों पर अंग्रेज़ी लादे रखना जनता की सुविधा बता रहे हैं। बंगाल, आंध्र, तामिलनाड के लोगों को हिन्दी सीखने में श्रम करना होगा, उन पर हिन्दी लादना अन्याय होगा, अंग्रेज़ी क्या वे मां के दूध के साथ पी लेते हैं ? उनकी भाषाओं का दमन करके, उन पर अंग्रेज़ी लादे रहना क्या प्रजातान्त्रिक सिद्धांत और व्यवहार है ?"

देव को सुनने का संकेत कर तप्पी बोला—"यार, एक बात मज़ेदार है। जब राजनीतिक दलों के लीडर जनता से वोट मांगते हैं, सेवा के लिये वायदे करते हैं तब तो जनता की समझ में आने वाली भाषा में बात करते है परन्तु जब राजगद्दी पर आसन जम जाता है तो कायदे-कानून और प्लान अंग्रेज़ी में बनाने लगते हैं। जनता को केवल एक बात समझाने की जरूरत रहती है—वोट दो। वोट मिल जाये तो फिर अंग्रेज़ी की ओट कर लो। जनता तुम्हारी बात और घात समझ न सके।"

"जी हां, आप अंग्रेज़ो के सिंहासन पर हिन्दी का क़ब्ज़ा कर लीजिये और अहिन्दी भाषी आंखें झपकाते रहें" नायर ने विरोध किया।

"हम तो किसी पर हिन्दी नहीं लादना चाहते परन्तु आप लोगों पर अंग्रेज़ी क्यों लादना चाहते हैं ?" देव बोला, "आप यह बताइये, बंगाल में, आन्ध्र में या तामिलनाड में सरकारी काम-काज चलाने के लिये उन लोगों पर अंग्रेज़ी लादने की क्या जरूरत है ? अपने प्रदेश में भी सरकारी नौकरी पाने के लिये अंग्रेज़ी सीखना जरूरी क्यों हो ? या अपने प्रदेश में अपनी मातृभाषा जानने वाले लोग अयोग्य और अशिक्षित क्यों समझे जायें ?"

नायर ने देव को टोक कर पूछा—"केन्द्रीय शासन में कौन भाषा चलेगी ? वहां नौकरियां किस प्रदेश के लोगों को मिलेंगी ?"

तप्पी ने पूछा—"आपको केन्द्रीय शासन की चिंता अधिक है, प्रदेशों में विदेशी भाषा लादी जाने की नहीं। अंग्रेज़ी पढ़ने का प्रयोजन केन्द्रीय सरकार में नौकरी पाना ही है न ? तुम तो देश-विदेश के वैज्ञानिक विकास और सम्पर्कों की बातें कर रहे थे। वास्तव में प्रश्न है केन्द्रीय नौकरियों के लालच का। यह राष्ट्रीय और जनहित का दृष्टिकोण है या नौकरी की होड़ का !"

"जरूर है।" बनर्जी ने मेज पर पाथ मार कर प्यालों और गिलासों को कंपा दिया, "हिन्दी वालों को नौकरियों का लालच नहीं है ? उत्तर-प्रदेश सरकार ने लखनऊ में जो सैनिक स्कूल खोला है उसमें शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी क्यों रखा है ? आप की सरकार तो बहुत हिन्दी प्रेमी गिनी जाती है परन्तु इस चिंता में कि सैनिक अफसरों के चुनाव में उत्तर प्रदेश के जवान पीछे रह जाते हैं, उन्होंने सैनिक स्कूल में शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी कर दिया है।"

देव ने कहकहा लगा दिया—"वाह खूब ! देश की सेना में सिपाहियों की भाषा तो उनकी मातृभाषा हो और अफसरों की भाषा अंग्रेजी रहे। यह समाज में समता लाने और समाज को श्रेणी-हीन बनाने का अच्छा तरीका है ! सरकार इस देश में अफसरों और शासक वर्ग की भाषा और सर्वसाधारण जनता और सिपाहियों की भाषा पृथक-पृथक रखना चाहती है। शासक और शासित वर्ग अलग-अलग रहे। यदि अच्छा अफसर बनने के लिये अंग्रेज़ी जरूरी है तो अंग्रेज़ सदा आप से अधिक योग्य रहेगा !"

तप्पी ने जोड़ दिया—"अंग्रेज़ तो पैदा ही योग्य होता है। आप को योग्य बनना पड़ेगा।"

बनर्जी ने कहा—"जी हां, आप बहुत चालाक हैं। बंगाल में बंगला में शासन चले, तामिलनाड में तामिल में चले और दिल्ली में ?"

"हिन्दी वालों को स्वयं अपनी भाषा पर भरोसा नहीं, दूसरों से कहते हैं कि हिन्दी को स्वीकार करो।" नायर ने चुटकी ली।

देव तड़प उठा—"हिन्दी वालों को अपनी भाषा पर भरोसा नहीं, बंगालियों को बहुत है। बंगालियों का तो दावा है कि बंगला भारत की सबसे विकसित भाषा है, बंगला टेगोर की भाषा है परन्तु स्वयं बंगालियों को बंगला पर कितना भरोसा है ? सन् ५२ से ५६ तक बंगाल की विधान सभा में पचानवे प्रतिशत से भी अधिक भाषण अंग्रेज़ी में हुये। आप से अच्छे तो हिन्दी और पंजाबी लोग रहे। इन की विधान सभाओं में सत्तर-अस्सी प्रतिशत भाषण हिन्दी या अपनी

भाषाओं में हुये। यह है राष्ट्रीय भावना और अपनी भाषा पर आप का भरोसा !

नायर ठहाका लगा कर हंस पड़ा—"हिन्दी वाले अंग्रेज़ी में दूसरे प्रदेशों का मुकाबला नहीं करते इसलिये अंग्रेज़ी से बहुत चिढ़ते हैं।"

विवाद में कई और लोग भाग लेने लगे। अध्यापक तिवारी बोल पड़ा—"अंग्रेज़ी में तो आपका मुकाबला रूसी, जापानी, जर्मन कोई भी नहीं कर सका। शायद आप उन सब से योग्य होंगे।"

"सुनो, सुनो !" देव ने अपनी बात सुनाने के लिये मेज़ पर थाप दी, "हिन्दी वालों से आपका मतलब क्या ? हिन्दी वाले हैं कौन ? हिन्दी किस की भाषा है ? जिस हिन्दी को विधान द्वारा भारत की राष्ट्रीय या देश की सम्मिलित भाषा स्वीकार किया गया है, जिस भाषा में हिन्दी की पुस्तकें छपती हैं, हिन्दी के समाचार-पत्र छपते हैं, वह हिन्दी किस प्रदेश की भाषा है ? तप्पी की भाषा तो अवधी है, जिस भाषा में भारत का सबसे बड़ा क्लासिक है—'रामायण'। हमारी है ब्रजभाषा जिसमें पंजाब से लेकर दक्षिण तक के सन्तों ने भक्ति रस के काव्यों की रचना की है। तिवारी की भाषा भोजपुरी है। हिन्दी किस की भाषा है ? न राजस्थानियों की, न दिल्ली-हरियाना के लोगों की, न ग्वालियर और इंदौर के आस-पास के लोगों की। हम अपनी मां और बहू से हिन्दी नहीं बोलते। यह भाषा तो हम लोग अपनी भाषा न जानने वाले लोगों की सुविधा के लिये बोलते हैं। जैसे भारत के नक्शे में देश के किसी भाग का नाम भारत और हिन्दुस्तान नहीं है, वैसे ही हिन्दी देश के किसी भाग या प्रदेश की बपौती या भाषा नहीं है। हिन्दी तो नया शब्द बना लिया गया है। हिन्दी दूसरे देशों के लोग हिन्दुस्तान की भाषा को कहते थे। इस देश के लोग नगरों में, देश के अनेक भागों के बीच पारस्परिक सम्पर्क के लिये बोली जाने वाली भाषा को नागरी कहते थे। भक्तिकाल में कबीर से नामदेव और दादू जैसे संतों के प्रभाव से नागरी में ब्रजभाषा का पुट रहा। मुगलों के काल में उनके प्रभाव से फारसी का पुट आ गया। अंग्रेज़ आये तो उनका प्रभाव पड़ा। देश में राष्ट्रीयता की भावना जागी तो पारिभाषिक शब्दों के लिये और देश की सब भागों की भाषाओं के सामीप्य के लिये सांझी भाषा को संस्कृत का आधार देने की प्रवृत्ति आने लगी।"

तिवारी देव के समर्थन में बोला—"नागरी अथवा हिन्दी ऐतिहासिक रूप से इस देश के प्रदेशों में पारस्परिक सम्पर्क का माध्यम और राष्ट्रीय भावना की

प्रतीक रही है। उत्तर से दक्षिण तक के तीर्थों में, बड़ी-बड़ी मिलों और फैक्टरियों में जहां सब प्रदेशों के लोग कार्य करते हैं, क्या वहां कोई भाषा नहीं बोली जाती ? वही तो नागरी है ! क्या उस भाषा का और विकास नहीं हो सकता ? जिस समय देश में विदेशी शासन से स्वतन्त्रता की और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिये देश के सब भागों में संयुक्त प्रयत्न की चेतना और भावना जागी, उस समय अपने आप को अहिन्दी कहने वाले प्रदेशों के लोगों ने स्वयं ही राष्ट्र की एक भाषा बनाने का यत्न किया था और राष्ट्रभाषा का स्थान नागरी अथवा हिन्दी को दिया। गांधी जी, सुभाष और राजा जी हिन्दी के सबसे बड़े प्रचारक थे। आज आपकी दृष्टि में राष्ट्रीय भावना और संयुक्त प्रयत्न का कुछ महत्व नहीं रहा, महत्व है आपकी दृष्टि में नौकरियों का। आज आप राष्ट्र के विभिन्न प्रदेशों में बातचीत और सम्पर्क उस भाषा के माध्यम से रखना चाहते हैं, जिसमें पहले घृणा से विदेशी भाषा कहते थे।"

नायर ने बहस की गम्भीरता ठंडी पड़ती देख कर फिर फुलझड़ी छोड़ दी—"अरे भाई, अंग्रेज़ी के बिना हर्गिज काम नहीं चल सकता…।"

"तो फिर अंग्रेज ही बन जाओ" देव ने चिढ़ कर कहा।

"अंग्रेज़ बनने की कोशिश तो हो ही रही है" तिवारी ने कहा, "सब समर्थ भारतवासियों का लक्ष्य अंग्रेज बन जाना हो गया है। आप देख लीजिये, अंग्रेजों के जाने के बाद से यूरोपियन ढंग के स्कूलों में विद्यार्थियों की संख्या कितनी बढ़ गयी है। राष्ट्रीय सरकार के सब अफसर अपने बच्चों को अंग्रेज़ी स्कूलों में भेजते हैं। जिस खद्दरधारी की सामर्थ्य हो जाती है, औलाद को अंग्रेज़ी स्कूल में भेजने लगता है। सरकारी और साधारण स्कूल तो जनता एक्सप्रेस हैं। जब समर्थ लोग अपने बच्चों को विशेष स्कूलों में भेज सकते हैं तो समर्थ लोग साधारण स्कूलों की चिंता क्यों करने लगे ?"

तप्पी ने नायर की बात का समर्थन किया—"हम भी कहते हैं, देश का शासन अंग्रेज़ी के बिना नहीं चल सकता। कारण यह है कि शासन चलाती है नौकरशाही और शासन की नीति बनाते हैं मंत्री बने हुये पुराने राष्ट्रीय नेता। अंग्रेज़ सरकार ने अपनी नौकरशाही को अंग्रेज़ी में शासन करना सिखाया था। भारत की नौकरशाही ने शासन के लिये आवश्यक बातों को तोते की तरह अंग्रेज़ी में रट लिया है। सर्वसाधारण की भाषा बोलने से उन्हें जनता में मिल जाने की ग्लानि अनुभव होती है। लोग-बाग की भाषा न बोल सकने से अपनी

विशिष्टता और गर्व अनुभव होता है। कांग्रेसी नेता स्वराज्य के लिये सदा अंग्रेज़ी में दर्खास्तें देते थे। अंग्रेजों ने उन की दर्खास्त अंग्रेज़ी में ही मंजूर की है इसलिये कांग्रेसी नेताओं का आदि-अंत अंग्रेज़ी में ही है।"

बनर्जी ने गम्भीर होकर कहा—"अपने ख्याल में आप बहुत बड़ा मज़ाक कर रहे हैं लेकिन एक केन्द्र से इतने भाषा-भाषी लोगों के प्रदेशों का संयुक्त शासन करना हो तो सम्पर्क के लिये कोई सांझा माध्यम चाहिये ही ···।"

देव ने टोक दिया—"अकबर, औरंगजेब भी तो लगभग पूरे भारत पर ही शासन करते थे। उससे पहले सुनते हैं, चन्द्रगुप्त मौर्य और अशोक भी इतने ही विस्तृत भाग पर शासन करते थे। आप का विचार है, वे लोग गूंगों की तरह संकेतों से ही काम चला लेते होंगे ···।"

नायर ने चुनौती दी—"आप अब भी पूरे भारत पर उत्तर की हुकूमत चलाना चाहते है, उत्तर भारत की भाषा पूरे देश पर लादना चाहते हैं! यह प्रजातन्त्र का जमाना है, अब आपकी तानाशाही नहीं चल सकती!"

तप्पी ने उल्टी चुनौती दी—"यह प्रजातंत्र शासन है कि दो प्रतिशत को भी समझ में न आ सकने वाली भाषा में शासन किया जाय? भारत सरकार जनता के सहयोग से शासन करना चाहती है या जनता को दबाने के लिये जनता के लिये अबोध भाषा में षड़यन्त्र कर रही है! अंग्रेज़ी शासन में तो शासक की सुविधा के लिये अंग्रेज़ी सहनी पड़ती थी। अब किस की सुविधा के लिये सहें?"

देव ने उत्तर दिया—"अंग्रेज़ी की छोड़ी विरासत, नौकरशाही की सुविधा के लिये।"

तप्पी कहता गया—"कहने को देश स्वतंत्र है, प्रजातंत्र है परन्तु देश का शासन, शासन की नीति और योजनायें भारत की चौदह भाषाओं में से किसी में न होकर अंग्रेज़ी में बनायी जाती हैं।"

बनर्जी ने खीझ प्रकट की—"जी हां, सेन्ट्रल सेक्रेटेरियेट में सब लोग अपनी-अपनी भाषा शुरू कर दें तो वह चिड़िया-घर बन जायगा। सब लोग अपनी-अपनी बोलियों में चहचहायेंगे। सुनने-समझने की चिंता किसी को नहीं होगी।"

तप्पी ने प्रश्न किया—"यह आप का जनवादी दृष्टिकोण है कि सेन्ट्रल गवर्नमेंट के पब्लिक सर्वेण्ट की ही सुविधा का विचार किया जाये, देश की अट्ठानवे प्रतिशत जनता की सुविधा का विचार न किया जाये। सेन्ट्रल सेक्रेटेरि-

यट में असुविधा न हो इसलिये आप सब राज्यों को अंग्रेजी के चाबुक से हांकते रहेंगे। सेन्ट्रल से आदेश अंग्रेज़ी में जाते हैं। राज्यों की नौकरशाही को अपने कारनामे सेन्टर के सामने अंग्रेज़ी में पेश करने पड़ते हैं इसलिये राज्यों की नौकरशाही भी अंग्रेज़ी में अमल करती चली जाती है ।"

"और रास्ता ही क्या है ?" नायर ने पूछा।

"रास्ता बहुत सीधा है" तप्पी ने उत्तर दिया, "आज भारत सरकार के सम्बन्ध सभी राष्ट्रों से हैं। भारत सरकार सब देशों के राजदूतों को उन के देश की भाषाओं में ही सम्वाद लिख कर देती है। साथ में एक हिन्दी प्रति भी रहती है। माना यह जाता है कि दोनों में अंतर होने पर प्रामाणिक हिन्दी प्रति होगी। देश के विभिन्न भाषा-भाषी राज्यों के साथ भी इतना सलूक क्यों नहीं किया जा सकता ? आप की सरकार रूस और चीन को रूसी और चीनी भाषाओं में पत्र लिख सकती है, बंगाल और मद्रास राज्यों की सरकारों को बंगला और तामिल भाषाओं में पत्र नहीं लिख सकती ? प्रत्येक राज्य को उस राज्य की भाषा में ही आदेश दिये जायें। राज्य आप की भाषा में आप की बातें और समस्याएं केन्द्र को भेज सकेगा। भारत सरकार को अंग्रेज सरकार से विरासत में मिले अफसरों की अंग्रेज़ी की आदत के कारण, आप भविष्य के लिये भी सभी लोगों पर अंग्रेज़ी लाद रहे हैं। भारत सरकार को सब राज्यों से उन की भाषा में ही सम्पर्क निबाहना चाहिये। सरकार को किस प्रदेश की भाषा जानने वाले नहीं मिल सकते ? अपने-अपने प्रदेश में लोग अपनी-अपनी भाषा में काम करें।"

नायर ने विरोध किया—"वाह, साझा माध्यम कोई न रहे ! सब लोग बिखर जायें ! साझा माध्यम या साझा सूत्र न रहेगा तो पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण के लोग मिलने पर किस भाषा में सम्पर्क करेंगे ?"

देव ने भी ऊंचे स्वर में उत्तर दिया—"देश के अट्ठानवे प्रतिशत लोग भी पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण आते-जाते हैं। वे किस प्रकार अपना प्रयोजन पूरा करते हैं ? आपको पब्लिक सर्वेंट (जनसेवक) बनने वाले सरकारी नौकरों की सुविधा का ख्याल है, शेष जनता का नहीं !"

बनर्जी ने फिर आग्रह किया—"आखिर पब्लिक सर्विस कमीशन और आई० ए० एस० में आप उम्मीदवारों की परीक्षायें किस भाषा में लेंगे ? हिन्दी वालों की सब तिकड़म का प्रयोजन है कि उन्हें सुविधा हो जाये।"

देव ने अपनी बात दोहरायी—"फिर वही व्यर्थ बातें, हिन्दी वाले ? हिन्दी वाला कौन है ? हम तो यह नागरी या हिन्दी बोलते ही तुम लोगों की सुविधा के लिये हैं। हमारी तो अपनी ललित, कोमल ब्रज की बोली है।"

तप्पी ने हाथ उठाकर समाधान किया—"किसी भी प्रदेश को विशेष सुविधा या असुविधा होने का कारण नहीं है। केन्द्र की सरकारी नौकरी ही सब से बड़ी महत्वाकांक्षा है ? राज्यों की प्रजा के प्रति हजार लोगों में से शायद एक आदमी केन्द्र की सरकारी नौकरी पा लेता होगा, इस में भी सन्देह है। प्रति हजार में से ऐसे एक आदमी के लिये देश भर पर अंग्रेज़ी लाद कर करोड़ों प्रजा का दमन किया जा रहा है। अहिन्दी प्रदेशों के कुछ एक आदमी केन्द्र में नौकरी पा सकें इसलिये केन्द्र में शासन की भाषा अंग्रेज़ी रहनी चाहिये। केन्द्र में शासन की भाषा अंग्रेज़ी है इसलिये राज्यों की भाषा भी अंग्रेज़ी रहनी चाहिये, यह एक विषय चक्र है जिसमें देश की अंग्रेज़ी न जानने वाली प्रजा सदा पिसती रहेगी और देश की जनता पर अंग्रेजी सीखने की विवशता सदा बनी रहेगी। शासक और शासित की भाषा में भी सदा अन्तर रहेगा और आप उसे प्रजा द्वारा शासन कहते रहेंगे, क्या मज़ाक है ? आप प्रत्येक प्रदेश की जनसंख्या के अनुपात से केन्द्र की सरकारी नौकरियां बांट लीजिये या कहिये आप अपनी अंग्रेज़ी भक्ति के लिये कुछ अधिक इनाम चाहते हैं ? सरकारी नौकरी के महत्वाकांक्षी यदि अंग्रेज़ो सीख सकते हैं तो कोई दूसरी भाषा भी सीख सकते हैं। असल समस्या है कि हमारे मौजूदा नेता और नौकरशाह अंग्रेज़ी की गोद में पले हैं, वे अपनी भाषा जानते नहीं। वे अपने अंग्रेज़ी अभ्यास के लाभ का मोह नहीं छोड़ना चाहते।"

नायर ने चुनौती दी—"काफी हाउस में भाषा की समस्या तुम चाहे जैसे हल कर लो परन्तु भाषा का प्रश्न तो दिल्ली की लोक-सभा में तय होगा। वहां सब अंग्रेज़ी जानते हैं। देश की भाषा का प्रश्न अशिक्षित और अर्धशिक्षित लोगों के निर्णय से नहीं हो सकता। उस में आप का प्रजातंत्र नहीं चल सकता।"

देव ने विरोध किया—"जरूर चल सकना चाहिये और चल सकता है। भाषा का प्रश्न प्रत्येक राज्य की प्रजा की सुविधा और हित की दृष्टि से तय होना चाहिये। यदि राज्यों में प्रजा इस बात पर तुल जाये कि अपने राज्य में अपनी सरकार से केवल अपनी ही भाषा में सम्पर्क रखेगी, अंग्रेज़ी को बीच में नहीं आने देगी तो कठिनाई स्वयं दूर हो जायेगी। कम से कम राज्यों में प्रजा

और सरकार के बीच अंग्रेज़ी की अड़चन क्यों हो ? राज्यों में जनता को अंग्रेज़ी से मुक्ति मिल जायेगी तो केन्द्र में भी मिल जायेगी ।"

बनर्जी ने चेतावनी दी—"आप प्रादेशिक भाषाओं के मोह की संकीर्णता का विष फैलायेंगे तो वह पूरे राष्ट्र के वैज्ञानिक और सांस्कृतिक विकास के लिये हानिकारक होगा । अंग्रेज़ी ऐसा माध्यम है जिस से हम आधुनिक संसार के वैज्ञानिक और सांस्कृतिक विकास के सम्पर्क में आ सकते हैं । आप राज्यों और प्रदेशों की अविकसित भाषाओं के द्वारा क्या उन्नति कर सकते हैं ? इन भाषाओं में आधुनिक विज्ञान, संस्कृति और कला के प्रयोजन पूरे कर सकने के योग्य शब्द और साहित्य हैं ही नहीं । अपने मास्तिष्क और ज्ञान की पहुंच को अविकसित भाषा के शिकंजे में जकड़ देना अपने आप को संसार की प्रगति से वंचित कर देना है । हमारे लिये उस प्रगति से सम्पर्क का माध्यम अंग्रेज़ी ही हो सकती है । हम तो कहते हैं देश से अंग्रेज़ी को हटाने की अपेक्षा उसे शिक्षा में अनिवार्य कर दिया जाये ।"

देव ने प्रश्न किया—"आप के विचार में देश के केवल वही लोग आधुनिक विकास के सम्पर्क में आ सकते हैं जो अंग्रेज़ी जानते हों । सभी लोगों के लिये ज्ञान और संस्कृति को सुलभ बनाना है तो पूरे भारत की प्रथा को अंग्रेज़ी का आप की तरह अधकचरा ज्ञान नहीं, बल्कि समुचित ज्ञान होना चाहिये ।"

बनर्जी चिढ़ गया—"हमारा ज्ञान अधकचरा है; तुम को बहुत अंग्रेज़ी आती है ?"

देव ने उत्तर दिया—"हम ने एम० ए० तक अंग्रेज़ी में ही पढ़ा है और अभी तक अच्छी अंग्रेज़ी सीख लेने का विश्वास नहीं है । अंग्रेज़ी साहित्य का भारतीय भाषाओं में अच्छे से अच्छा अनुवाद करने वाले आप को सैकड़ों की संख्या में मिल सकते हैं । भारतीय साहित्य का अंग्रेज़ी में अच्छा अनुवाद करने के लिये सिर पटक कर रह जाते हैं । डेढ़ सौ वर्ष में हम इतनी ही अंग्रेज़ी सीख सके हैं ।"

तिवारी बीच में बोल पड़ा—"जिन्हें विज्ञान या विशेष विषयों के अध्ययन के लिये अंग्रेज़ी ज्ञान की आवश्यकता है, उन्हें अंग्रेज़ी अच्छी तरह से पढ़ाइये । जिन लोगों को मैट्रिक पास करके रेलवे, पुलिस, सेक्रेटेरियट में नौकरी करनी है, दूसरे व्यवसायों में काम करना हैं, उन का दिमाग अंग्रेज़ी के बोझ से खराब करने की क्या जरूरत है ? उन्हें अपनी भाषा ही अच्छी तरह सीख लेने दीजिये ।

सर्वसाधारण को अनिवार्य रूप से विदेशी भाषा सिखाने के लिये इतना समय, धन और शक्ति नष्ट करने की क्या आवश्यकता है ?"

देव ने तिवारी की बात अनसुनी कर बनर्जी की बांह पकड़ ली—"अच्छा मित्र बताओ, जब मजे में गुनगुनाते हो तो बंगला में गाते हो या अंग्रेज़ी में ?"

बनर्जी ने कहा—"वह बात दूसरी है।"

देव ने बनर्जी की ओर तर्जनी उठायी—"बात दूसरी नहीं, बात यह है कि अंग्रेज़ी हमारे लिये स्वाभाविक नहीं बन सकी। अंग्रेज़ी सिर्फ जुबान पर है, तोते की तरह रट कर बोलते हैं। यह बताओ, तुमने सोलह वर्ष अंग्रेज़ी भाषा सीखने में लगा दिये। अंग्रेज़ी आखिर एक भाषा ही है न। अंग्रेजी बोल-पढ़ लेने से ही आदमी विद्वान और वैज्ञानिक नहीं हो जाता। हम ने लन्दन में जूता पालिश करने वाले और सड़क बुहारने वाले को भी अंग्रेज़ी बोलते देखा है। वे सब वैज्ञानिक, दार्शनिक और कलाकार नहीं होते। मित्र, तुमने सोलह बरस केवल अंग्रेज़ी सीखने में ही व्यय न करके अपनी भाषा से विज्ञान, दर्शन और कला सीखने में खर्च किये होते तो अधिक गहरे और उपयोगी व्यक्ति बन सकते थे।"

बनर्जी और शुक्ला एक साथ बोल पड़े—"अंग्रेज़ी न सीखे होते तो और भी मूर्ख होते। भारतीय भाषाओं में सोलह बरस तक पढ़ने योग्य है ही क्या ? विज्ञान, संस्कृति और कला की बात जैसे आप अंग्रेज़ी में सुविधा से कह सकते हैं, भारतीय भाषाओं में कह ही नहीं सकते।"

तप्पी बोला—"अपनी भाषा में आप इसलिये नहीं कह सकते कि आपने बातों को बिना समझे तोते की तरह अंग्रेज़ी में रट लिया है, हृदयंगम नहीं किया। यदि भाव और अनुभूति हो तो शब्द अपने आप मिल जाते हैं।"

तिवारी बोला—"जब आप ऐसी आवश्यकताओं के लिये अपनी भाषाओं का प्रयोग ही न करें तो उन में इस प्रकार का ज्ञान कहां मिलेगा ! भविष्य में भी आप ऐसे प्रयोजनों के लिये अंग्रेज़ी पर ही निर्भर करने की नीति रखेंगे तो हमारी भाषायें हमारे अपने ही दोष से अविकसित रहेंगी। आप अपनी भाषाओं को आने वाली पीढ़ियों के लिये भी अयोग्य बनाये रखने की नीति पर चल रहे हैं।"

तप्पी ने तिवारी की बांह पर हाथ रख, उसे चुप करा कर बनर्जी और शुक्ला से पूछा—"आप का ख्याल है, इस देश के वैज्ञानिक और सांस्कृतिक

विकास के लिये सब लोगों का अंग्रेज़ी सीख लेना आवश्यक है ?"

बनर्जी ने मेज़ पर हाथ मारा—"निश्चय ! अविकसित भाषाओं के मोह की अपेक्षा मनुष्य के मस्तिष्क का विकास अधिक महत्वपूर्ण है।"

तप्पी बोल पड़ा—"ठीक है, पिछले डेढ़ सौ वर्षों में अंग्रेज़ अपने शासन की शक्ति और अधिकार से इस पूरे देश में दो प्रतिशत से अधिक लोगों को भी अंग्रेज़ी नहीं सिखा सके। साधारण गणित से अंग्रेज़ी को ही देश के वैज्ञानिक और सांस्कृतिक विकास का साधन मानने वाले, इस देश की शत-प्रतिशत जनता को वैज्ञानिक और सांस्कृतिक विकास के योग्य ७५०० वर्षों में ही कर सकेंगे।"

देव ने बनर्जी की ओर देखा—"यह तो राष्ट्र के विकास की बहुत लम्बी योजना हो गयी। शायद इस से बहुत कम समय में वैज्ञानिक और सांस्कृतिक ज्ञान को अंग्रेज़ी से भारतीय भाषाओं में प्राप्त किया जा सकता है। अंग्रेज़ी तोता न बनना पड़ेगा, भारतीय ही रह सकेंगे।"

चिड़िया बोली

गली में उस दिन मुंह अंधेरे ही कलह का कोहराम मच गया था। सबसे पहले गली की चाची, सिन्हा बाबू की बबुआइन का चीत्कार सुनाई दिया। वह गरज-गरज कर शाप देने लगीं—गली के मोहरे पर जादू-टोना करने वालों के बाल-बच्चे मरें। अपनी बला दूसरों के सिर टालने वाले निरबंस हो जायें। ऐसी सीख देने वालों का वंश डूबे।

करमचंद के गोद के लड़के मिहन्दर (महेन्द्र) को सूखे का रोग था। मिहन्दर की मां ने चाची की गाली का लक्ष्य अपने प्रति समझ लिया। वह अपने दरवाज़े से गरजी—"गाली देने वाली रांड अपने खसम को खाये। बच्चों को खाये ।"

गली की बुआ, मुन्शी जी की बड़ी बहिन की झाड़-फूंक और टोने-टटके के ज्ञान के बारे में ख्याति है। उन्हें सन्देह हुआ कि गाली उन्हें भी लक्ष्य की गई थी। बुआ भी अपने चबूतरे पर आ गई और व्यंजना से गाली देने वालों को ललकार कर मिहन्दर की मां की सहायता में मोर्चा ले लिया।

प्रौढ़ पुरोहित जी ने शान्ति के लिये समझाया—"सान्त रहो, सान्ति करो पर ऐसा काम बुरा है। हमने खुद देखा है। गली के मुहाने पर फूल पड़े हैं, मिठाई, मौली (कलावा) पड़ी है, जल चढ़ाया हुआ है। हम तो बच कर निकल आये पर लड़के-बाले क्या समझते हैं ! जंतर-मंतर, टोना-टटका करना हो तो गली-पड़ोस का तो ध्यान रखना चाहिये। क्या नाम कहते हैं ; डायन भी सात घर छोड़ देती है।"

रामसहाय 'आर्य' ने समझा, पुरोहित जी अपनी पोप लीला फैला रहे हैं। उसने बहुत ऊंची पुकार से उपदेश दिया—"देवियो और भद्र पुरुषो, यह सब पोप लीला है। मिथ्याविश्वास है, कुसंस्कार है। इससे किसी का कुछ नहीं बिगड़ता।"

मिहन्दर की मां बहुत बढ़ कर बोल रही थी। सिन्हा साहब के बेटे महेश ने उसे डांट दिया।

कर्मचन्द यह कैसे सह जाता ! उसने महेश को दो झांपड़ दे दिये—"तुम्हारी ज़बान चलती है तो हमारे हाथ चलते हैं।"

झगड़ा स्त्रियों से मर्दों में पहुंच गया। मुंशी जी ने धमकाया—"यह क्या बत्तमीजी है ? हाथ चलाने का क्या मतलब ? सिन्हा बाबू, आप पुलिस में रिर्पोट लिखाइये, हम मिश्र जी से भी कहते हैं।"

मिश्र जी स्नान-पूजा से शीघ्र निवृत्त हो जाना चाहते थे। श्री 'मां' एक्सप्रेस से कलकत्ता जा रही थीं। विलम्ब हो जाने से दर्शनाभिलाषी भीड़ में पीछे रह जाते। गली से कभी कर्मचन्द, कभी मुंशी जी और सिन्हा बाबू उन्हें पंचायत के लिये पुकार लेते थे।

मिश्र जी बार-बार झल्ला रहे थे—"कैसे मूर्ख, जाहिलों से पाला पड़ा है। टोने-टटके में क्या रखा है ? कैसा अंधविश्वास है, राम-राम ! भगवान इन्हें सुमति दे।" उसी सांस में पुकार लिया, "मुन्नी बेटी, जानती हो हमें तुरन्त स्टेशन जाना है। हमारे लिये कपड़े निकाल दिये हैं ? जल्दी करो। रजिस्ट्रार साहब की गाड़ी आ गई तो..."

मुन्नी पुकार सुन कर पूछने आ गई थी बोली—"बाबा, आप नाश्ता कर लें तभी तो कपड़े पहनियेगा !"

मिश्र जी ने हाथ हिला दिया—"ना ना, नाश्ते-वाश्ते के लिये समय नहीं है। हम लौट कर भात खा लेंगे।"

मुन्नी ने आग्रह किया—"नहीं बाबा, खाली पेट नहीं जाने देंगे। आप समय पर नहीं खाते हैं तो कष्ट हो जाता है।"

मिश्र जी ने बेटी की बुद्धि पर विस्मय प्रकट किया—"क्या कहती हो बेटी ! श्री 'मां' का तो दर्शन ही कष्टमोचन है। वे करुणा दृष्टि कर दें तो रोग-संताप मिट जायें। मां के ऐसे सैकड़ों चमत्कार प्रसिद्ध हैं। उनकी कृपादृष्टि हो जाय तो हमारा पेट का कष्ट भी दूर हो जाये। औषध तो सब करा चुके।"

मुन्नी ने पूछ लिया—"बाबा, रोग यदि कर्म का फल है तो कोई उसे कैसे काट देगा ?"

तप्पी ने कहा—"जो तथ्य की कसौटी से प्रमाणित नहीं, वह केवल विश्वास ही है। कर्म-फल भी विश्वास ही है। विश्वास के ही बल पर चलना है तो
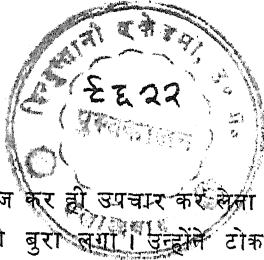
बाबा, चौराहा पूज कर ही उपचार कर लेना सब से आसान है···।"

मिश्र जी को बुरा लगा। उन्होंने टोक दिया—"तुम्हें अंध-विश्वास ही दीखता है। श्री 'मां' को इतने लोग यों ही मानते हैं! आप यदि जादू-टोने और झाड़-फूंक के विश्वास के सम्बन्ध में वोट लें तो निश्चय ही देश का बहुमत उस विश्वास के पक्ष में होगा पर हम उस पर कैसे विश्वास कर लें।"

मिश्र जी को तप्पी का तर्क अच्छा नहीं लगा। उन्होंने समझाया—"बेटे, तुम तो अपढ़ जाहिल लोगों की बात कर रहे हो। मां के भक्त ऐसे लोग नहीं हैं। बड़े-बड़े कमिश्नर प्रोफेसर, एस० पी०, डी० एम० उन पर श्रद्धा रखते हैं। उन लोगों में तुमसे कम समझ नहीं है। तुम स्टेशन पर चल कर देख लो न!"

तप्पी बोलने लगा था तो और भी कह गया—"मौसा जी, यों तो अजमेर शरीफ, अमृतसर के दरबार साहिब, आगरा के दयालबाग में जाने वालों में आपको कमिश्नर, जज, एस० पी०, प्रोफेसर भी मिल जायेंगे। आप अजमेर शरीफ और गुरुद्वारे में विश्वास कर लेने के लिये तैयार नहीं हैं।"

मिश्र जी कुछ झुंझला गये—"अरे तुम न विश्वास करो पर जो करते हैं उन के लिये तो है। विश्वास के बिना दुनिया में होता क्या है?"

तप्पी ने नम्रता से कह दिया—"लोगों के विश्वास तो भिन्न-भिन्न हैं। विश्वास परस्पर-विरोधी भी हैं। क्या भगवान के सम्बन्ध में सभी परस्पर-विरोधी धारणायें और विश्वास सत्य हो सकते हैं?"

मिश्र जी सचमुच झल्ला गये—"अरे सत्य कहीं तर्क से मिलता है। जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी"

दरवाज़े पर सिन्हा बाबू दिखाई दिये, उन्होंने पुकार लिया—"मिश्र जी, आप माता जी के दर्शन के लिये जा रहे हैं, हम भी आप के साथ दर्शन पा लेते। हम रिटायर हुये हैं तब से मन बहुत अशान्त रहता है।"

सिन्हा साहब बोल रहे थे तो मुन्नी भी कहती जा रही थी—"भावना से ही भगवान को बनाना है तो चाहे जिसे भगवान बना दो, चाहे जैसे भगवान बना लो। चाहे पीपल को भगवान और रक्षक मान लो चाहे पीर की कब्र को।"

"लाखों लोग मानते ही हैं और उन्हें उससे सान्त्वना भी मिलती है।" तप्पी ने समर्थन कर दिया।

मिश्रा जी ने व्यर्थ की बात की ओर ध्यान न देकर सिन्हा बाबू को उत्तर दिया—"हां जरूर चाहिये! रजिस्ट्रार साहब की गाड़ी में जगह हुई तब तो

ठीक ही है, नहीं तो आप रिक्शा में आ जाइयेगा ! हम स्नान करके कपड़े पहर लें ।" मिश्रा जी आंगन में चले गये ।

तप्पी और मुन्नी सिन्हा बाबू के मन की अशान्ति के बहुत से कारण जानते थे । तीनों लड़कियां इतनी बड़ी आयु तक कुमारी बैठी थीं । रिटायर होने पर पेंशन के ग्रेड के मामले में कुछ झगड़ा पड़ गया था । वह मामला दो बरस से विसटता चला आ रहा था । पेंशन निर्णय होने पर ही मिल सकती थी ।

मुन्नी ने सिन्हा बाबू से पूछ लिया—"चाचा जी, भीड़ में माता जी से बात करने का अवसर तो मिलेगा नहीं । सुना है उपदेश तो कम ही देती हैं, बस मुस्कराती रहती हैं । कभी हुआ कोई शब्द बोल दिया ।"

सिन्हा बाबू ने मुन्नी को समझाया—"बेटी, ब्रह्म में लीन सिद्धों को पूछने-बोलने की आवश्यकता नहीं होती । वे तो अंतरयामी होते हैं । माता जी तो सैकड़ों मील दूर बैठे लोगों को दर्शन दे देती हैं । क्या नाम, कलकत्ते में हों और काशी जाना हो तो जिसके यहां जाकर ठहरना चाहेंगी उसे अपने आप पता लग जायेगा । न चिट्ठी, न तार, न टेलीफोन । क्या समझे !"

तुम साइंटिस्ट हो, साइंस ऐसा कर सकती है क्या ?" सिन्हा बाबू ने तप्पी को चुनौती दी ।

"साइंस ! हां जरूर कर रही है ।" तप्पी ने गर्दन ऊंची करके हामी भर ली, "ब्रह्मलीन सिद्ध लोग अपनी सिद्धि से अपने ही विचार ट्रान्समिट (प्रसारित) कर सकते हैं । वे सिद्धि से केवल अपने में शक्ति उत्पन्न कर लेते होंगे । सिद्धों का आध्यात्मिक टेलीफोन केवल उनके निजी उपयोग में आ सकता है । ऐसे सिद्ध करोड़ों लोगों में से एक-आध होंगे । सिद्धों के सन्देश को भी विरले भक्त ही पा सकते हैं । ऐसी सिद्धि के लिये आधे जीवन की तपस्या दरकार होगी या उसे अवतार पुरुष होना चाहिये । साइंस ने पिछले चालीस वर्षों में रेडियो का कितना विकास कर दिया है । जो घर बैठे न्यूयार्क, लन्दन और मास्को में कही जाती बातें सुन लें । अब तो वैज्ञानिकों ने टेलीविज़न भी बना दिया है । घर बैठे-बैठे टेलीविज़न पर अमरनाथ, बद्रीधाम, कामाक्षा और रामेश्वरम् के मन्दिरों की पूजा और क्रिकेट का टेस्ट मैच समान रूप से देखा कीजियेगा । कलकत्ते में बैठ कर अपनी बात काशी में कह देना कौन बड़ी बात है । सैकड़ों सटोरिये कानपुर, काशी में बैठे फोन पर कलकत्ता, बम्बई में लिया-बेचा किया करते हैं । ब्रह्मलीन सिद्ध तो अपनी तपस्या की सिद्धि का उपयोग स्वयं ही कर

सकते हैं। वैज्ञानिकों की तपस्या से प्राप्त सिद्धि का उपयोग सम्पूर्ण संसार करता है। सिद्ध की भभूत तो सिद्ध के हाथ से ही शफ़ा देती है परन्तु वैज्ञानिक के नुसखे की गोली सब के हाथ से सब जगह दर्द दूर कर देती है। माता जी की सिद्धि से कितनों को लाभ हो सकता है।"

तप्पी अन्तिम शब्द कह रहा था तो रजिस्ट्रार साहब की बड़ी लड़की किरण बैठक में आ गयी। तप्पी उसके आदर में खड़ा हो गया परन्तु मुंह की बात उसने कह ही डाली।

किरण मुन्नी के पास तख्त पर बैठ गयी और पूछ लिया—"माता जी की बात हो रही है? बाबा अभी तैयार नहीं हुये? गाड़ी बाहर खड़ी है पर एक्सप्रेस तो लेट है।"

मुन्नी ने उत्तर दिया—"बाबा अभी आते;हैं। एक्सप्रेस लेट है तो क्या जल्दी है? किरण दीदी, आप भी माता जी के दर्शन के लिये जा रही है!"

"ना बाबा, हमने तो पन्द्रह बरस पहले ही माता जी के दर्शन करके गाली खायी थी।" किरण ने कह दिया।

"वह कैसे?" तप्पी ने उत्सुकता से पूछ लिया।

"अरे, हम लोग तब देहरादून में रहते थे। माता जी वहां बहुत दिन रही थीं। पापा तो, आप लोग जानते हैं, परम भक्त हैं न! भक्तों का ख्याल है कि माता जी को संगीत में बहुत रुचि है। मैं घर पर सितार सीखती थी। एक दिन पापा माता जी की प्रसन्नता के लिये मुझे उन के सामने सितार बजाने के लिये ले गये। मुझे सब से आगे, माता जी के समीप बैठा कर सितार दे दी गई। मैं झेंप के मारे गड़ी जा रही थी। सिर झुकाये जैसा बना, बजा दिया। गत समाप्त हुई तो माता जी ने मेरे सिर पर हाथ रख दिया। लोगों की नजरों में मैं महासौभाग्यशालिनी बन गयी।

"मैं गत समाप्त करके उठी तो माता जी ने शून्य में देखा और गम्भीर हो गयीं। सहसा बोल पड़ीं—आ रहा है, आ रहा है! इंजन आ रहा है। बीच में आग है। लाल आग। ध्वंस करेगा।"

"भक्त लोग माता जी के सत्संग से लौट रहे थे तो एक भक्त बोले—"भाई, माता जी को संगीत का गहरा ज्ञान है। सितार बज रही थी तो गत पर कैसे झूम रही थीं!"

"मैं नासमझ तो थी ही, कह दिया—संगीत का ज्ञान माता जी को खाक

नहीं है । मैं तो बेसुरी बजा रही थी । संगत के लिये तबला भी नहीं था ।

"पापा ने मुझे डांट दिया—क्या बकती हो, सन्त-महात्माओं के लिये ऐसा कहा जाता है !"

"सत्संगी लोग माता जी के मुख से अनायास निकली वाणी की व्याख्या करने लगे । एक चिन्ता से बोले—माता जी का संकेत है, साम्प्रदायिक द्वेष अभी बढ़ेगा । उस से ध्वंस होगा ।

"हमारे पीछे आते व्यापारी भक्त की बात कान में पड़ी—समझे ! कहा है लाख का सौदा नहीं करना । दिवाला निकल जायेगा ।

"उन दिनों पापा का सीनियर अंग्रेज़ अफसर कुछ बिगड़ा हुआ था । घर पहुंच कर पापा अपने मित्र से बोले—हम ने माता जी का संकेत समझ लिया है । हमें सावधान रहने के लिये चेतावनी दी है । लाल मुंह वाले से झगड़ा ठीक नहीं, ध्वंस कर देगा । हां भाई, उसके हाथ में ताकत है, सब कुछ कर सकता है"

तप्पी जोर से हंस पड़ा—"यह तो वही बात हुई—चिड़िया कुछ बोली । फकीर ने समझा, चिड़िया कहती है—सुभान तेरी कुदरत । पहलवान ने समझा—दंड, बैठक, कसरत । कुंजड़े ने समझा—मिर्चा, धनिया, अदरक । अपने विश्वास से जो जैसा चाहे समझ ले, चिड़िया तो कुछ नहीं कहती । आध्यात्मिक वाणियों के अर्थ ऐसे ही लगाये जाते है ।"

परायी बला

तप्पी ने काफी-चौपाल के दरवाज़े पर कदम रखा।

"आओ, आओ।" कह ज़हीर और सुरेश ने उसे पुकार लिया।

तप्पी स्वागत के लिये धन्यवाद में मुस्करा न सका, न उसने ज़हीर की बहस के लिये दावत स्वीकार की। मुंह लटकाये कुर्सी खींच कर बैठ गया। ज़हीर ने उसकी उदासी को लक्ष्य न कर पूछ लिया—"भाई बाजपेयी, तुम बताओ, यूनीवर्सिटी में आटोनामी न रही, कोई प्रेस्टीज न रहा तो यूनीवर्सिटी क्या हुयी, तब तो यूनीवर्सिटी सरकारी स्कूल बन जायगी।"

तप्पी चुप रहा।

"अमां कहीं से मार खाकर आये हो ! क्या बात है ?" ज़हीर ने तप्पी के मौन पर छींटा कसा।

तप्पी ने निरुत्साह से सिर हिला कर स्वीकार कर लिया—"सचमुच मार खाई है भाई !"

ज़हीर के कंधे तन गये—"क्या कहते हो। किस कमबख्त ने ऐसी हिम्मत की ?" उसने आस्तीनें चढ़ा लीं, "कहां है ? चलो, ज़रा बताओ तो !"

तप्पी ने उसे शांत रहने का इशारा किया—"किसी एक से नहीं, पूरी पब्लिक से मार खाई है। किस-किस से झगड़ोगे ? कौन जाने, सुनो तो तुम्हारी भी राय बदल जाये···।"

तप्पी ने संक्षेप में बताया—"वह बस में था। पुल के पास चार नौजवान विद्यार्थी बस में आ गये। नवयुवक बैठने के बजाय खड़े ही रहे। वे आपसी दिल्लगी में एक दूसरे को चपतिया रहे थे। खड़े मुसाफिरों को सहारा देने के लिये बस की छत से चमड़े के पट्टे लटके रहते हैं। एक पट्टे का जोड़ आधा उधड़ कर कच्चा हो गया था। एक छोकरे ने मर्दानगी के जोम में पट्टे को

झटक कर तोड़ लिया और साथियों की पीठों पर, सर्कस के जोकर की तरह पटाखे बजाने लगा ।

कहावत है—'सीख दीये बांदरा, घर बया का जाय' । तप्पी पर बया की तरह मुसीबत आने को थी । वह बंदरों को सीख देने लगा—"आपने पट्टा क्यों तोड़ लिया ? कोई मज़ाक में खिड़की का शीशा तोड़ दे, कोई गद्दी फाड़ दे । तकलीफ तो पब्लिक को होगी !"

छोकरे ने आंखें निकाल कर तप्पी को डांट दिया—"तुम कौन पब्लिक के सरपंच हो ?" उन में से एक आगे बढ़ सीना तान कर बोला, "हमने तोड़ा है, तुम से जो बनता है कर लो !" लड़का दोनों हाथ कमर पर रख तप्पी से मार-पीट करने के लिये तत्पर हो गया ।

बस के दूसरे मुसाफिरों को झगड़े की आशंका हुई । लोगों को बीच-बचाव करना पड़ा । तप्पी खूब जानता है, चार-पांच नौजवान मिल जायं तो क्या नहीं कर सकते । उस ने कहा—"भैया, मैं तो आप लोगों से कह रहा था, बस तो हमारे-आपके नित्य उपयोग की चीज़ है । हमारी ही चीज़ है, हम इसे तोड़ देंगे तो रोज़ नई बस कहां से आयेगी ? आप कहें तो माफी मांग लूं ! आप चाहें तो पूरी बस को तोड़ डालिये, हम पैदल या साइकिल पर ही चल लिया करेंगे !"

छोकरों ने तप्पी को एक बार और ललकार लिया—"हिम्मत हो तो आ जाओ !"

दूसरे लोगों ने भी तप्पी को नसीहत दी—"अजी, आप भी क्या कर रहे हैं ? काजी जी दुबले क्यों शहर के अंदेशे से ! गवर्नमेंट अपनी फिकर खुद कर सकती है ।"

ज़हीर ने तप्पी को सहानुभूति से समझाया—"अमां यार, तुमने खामुखा मुसीबत गले ली । पब्लिक प्रापर्टी मीन्स नोबडीज़ प्रापर्टी । आप किसी पड़ोसी का रुमाल उठा लीजिये, गली-मुहल्ला आप पर थू-थू करने लगेगा । सरकारी माल या पब्लिक प्रापर्टी आप सैकड़ों की नहीं, हजारों की चुरा लीजिये । लोग उसे परायी बला समझ कर मुंह फेर लेंगे । लोग उसे एडवेंचर, हाथ की खाज मिटाने का शौक और दिल्लगी समझते हैं । सरकारी काम में धोखा देना लज्जा-जनक नहीं समझा जाता । ऐसा चोरी-धोखा कानूनी दांव-पेंच से दिया जाता है । दूसरे नागरिक उससे अपना व्यक्तिगत सम्पर्क या नुकसान नहीं समझते । आप पब्लिक के नुकसान की फिक्र में खामुखा सिरदर्दी मोल लें और पब्लिक

को दुश्मन बनायें।"

सुरेश ने भी असन्तोष प्रकट किया—"पब्लिक की चोरी और पब्लिक का नुकसान तो लोग व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार समझ कर शेखी से करते हैं। देखा नहीं, रेलों में सेकेण्ड और फर्स्ट के गुसलखाने में स्विच या आईने पर क्या लिखा रहता है—'रेलवे से चुराया हुआ माल' लेकिन चोरी इस पर भी बन्द नहीं होती। लोग पूरी सीट का रेक्सीन काट कर ले जाते हैं, जो मिलता है ले जाते हैं। न ले जा सकें तो कम से कम तोड़ ही जाते हैं। सरकार का नुकसान कर बहुत संतोष अनुभव करते हैं।"

बैनर्जी ने भी कहा—"होली के बाद शहर की बसों और रेलों की हालत देखिये ! सब कुछ रंग और कीचड़ से गंदा हो जाता है। आपके अच्छे कपड़े पर रंग पड़ जाये तो आप कपड़े बिगाड़ने वाले की जान खा जायेंगे। आते-जाते भले लोग भी आपसे सहानुभूति प्रकट करेंगे। पब्लिक या सरकारी चीज़ को बिगाड़ देने पर देखने वाले कुछ नहीं बोलेंगे। उसे परायी बला समझेंगे।"

सुरेश उचक पड़ा—"सरकार के विरुद्ध असंतोष प्रकट करना हो तो सबसे आसान काम पब्लिक प्रापर्टी या सरकारी माल का नुकसान कर देना है। याद नहीं, उस साल स्टूडेंट्स पुलिस से भिड़ गये। बसें जला दीं, हमारी सड़क का डाकखाना फूंक दिया। शहर के आवारा लोग इस वीरता में सबसे आगे हो गये। भुगतना पड़ा हम लोगों को। तीन महीने तक जनरल पोस्ट आफिस भागना पड़ा। बस में दस पैसे देकर यहां आ जाते थे, उनकी जगह रिक्शा में छः आने देते रहे।"

तप्पी ने उत्साहित होकर विद्रूप किया—"गुस्से में सरकारी या सार्वजनिक माल का नुकसान करना, गुस्से में अपनी नाक काट लेना नहीं तो क्या है ? डाकखाने और बसें, मिनिस्टरों और सरकारी अफसरों की तनखाहें काट कर तो बनती नहीं। इस नुकसान से सरकार का क्या बिगड़ता है और सरकार है कौन—तुम और मैं। कल सुरेश भी चुनाव लड़ कर मिनिस्टर बन सकता है।

देव ने सुझाया—"कारण यह है कि जनता में विदेशी शासन के समय सरकार के प्रति जो विरोध भावना थी, वही मनोवृत्ति अभी तक चली आ रही है। तब प्रजा और सरकार में विरोध भावना स्वाभाविक थी। सरकारी माल तब भी पब्लिक का था परन्तु प्रजा सरकारी माल नष्ट करके या चुरा कर विदेशी सरकार को चोट पहुंचा सकने और परेशान करने का संतोष अनुभव

करती थी। अब सरकारी सम्पत्ति जनता की अपनी चीज़ है। अब सरकारी सार्वजनिक नुक़सान जनता का अपना नुक़सान है, परन्तु जनता में सरकार को अपना समझने की भावना नहीं आयी। अब जनता स्वयं सरकार बनाती है फिर भी उस को अपना नहीं समझ पाती।"

ज़हीर ने पूछा—"लोग कैसे मान लें कि सरकार उन की अपनी है। हमारी सरकार ने प्रजा का विश्वास पाया ही नहीं। प्रजा की सरकार से अब भी विरोध भावना चली आ रही है। सरकार का जनता से व्यवहार ही ऐसा है। जिस सरकारी महक़मे—म्युनिसिपैल्टी, अदालत, अस्पताल, थाने या सेक्रेटेरियट में चले जाइये; आप को सहानुभूति नहीं, हुकूमत और नोच-खसोट की प्रवृत्ति मिलेगी। रिश्वत दिये बिना काम नहीं बनेगा।"

के० लाल कारोबारी आदमी है, बोल पड़ा—"बिल्कुल ठीक है। जितने वैगन बुक करने हों, रेलवे के चार्जेज़ के अतिरिक्त प्रति वैगन एक हरा नोट दीजिये।"

कपूर रेलवे में है, उस ने विरोध किया—"रिश्वत क्या रेलवे में ही देनी पड़ती है? म्युनिसिपल कमेटी में जाइये, अदालत में जाइये, बिना लिये कौन आप की बात सुनता है? साइकिल का लाइसेंस ही लेना हो तो या तो खड़े-खड़े दिन खराब कीजिये या क्लर्क को पान-सिगरेट के लिये कुछ देकर काम करवा लीजिये।"

के० लाल हंस पड़ा—"ठीक कहते हो भैया, सब सरकारी महकमों में जहां जनता से सम्पर्क पड़ता है, सरकारी नौकर रिश्वत को दस्तूर और ऊपर की आमदनी समझते हैं।

कपूर ने लाल की बात को फिर रेलवे पर लांछन समझा और झुंझला उठा—"तुम रेलवे बालों को ही गालियां देते हो? रेलवे में तनखाह ही क्या मिलती है? रेलवे वालों को भी दूसरी जगह देना पड़ता है। बाजार में ब्लैक मार्केटिंग के दाम नहीं देने पड़ते? वह अदालत में जाता है तो, हस्पताल या थाने में जाना पड़ जाये तो दिये बिना कहां काम चलता है?"

तिवारी जोर से हंस पड़ा—"सरकारी महकमों के कर्मचारियों में यह जेबकटी का मज़ेदार समझौता है—तुम हमारे यहां आओ तो हमें दो, हम तुम्हारे यहां आयें तो हम से ले लो। सभी महकमों के सरकारी नौकर अपनी-अपनी प्राइवेट प्रैक्टिस चलाते हैं। वे समझते हैं कि तनखाह उन्हें केवल सरकारी

काम के लिये ही मिलती है। जनता के काम वे सरकारी काम नहीं समझते। जनता के काम के लिये वे जो श्रम करते हैं, उस के लिये फीस चाहते हैं।"

के० लाल ने कहा—"सब लोग तो सरकारी नौकर नहीं हैं, न सबके लिये प्राइवेट प्रैक्टिस और ऊपर की आमदनी का अवसर है। इस चक्कर में जनता तो मारी जाती है।"

कपूर ने विद्रूप किया—"जी हां, ब्लैक मार्केट करने वाले चीनी, चावल, घी में मिलावट करके लोगों में बीमारी फैलाने वाले, नकली दवाइयां बेच कर लोगों के प्राण लेने वाले खून-पसीने की कमाई खाते हैं! वे ऊपर की आमदनी या प्राइवेट प्रैक्टिस नहीं करते! वे निरीह जनता हैं। उन्हीं की जेब कटती है। वही तो असल में रियायत पाने और अनुचित लाभ के लिये सरकारी नौकरों को लालच से भ्रष्ट करते हैं। सब से पहले उन्हीं को फांसी दी जानी चाहिये।"

के० लाल जोर से हंस पड़ा—"चोरबाज़ारी या माल में मिलावट करने वाले को फांसी कौन देगा? उसे कौन पकड़ेगा? वही सरकारी नौकर जो चोरबाज़ारी और मिलावट करने वाले से मिलने वाली ऊपर की आमदनी पर चैन करता है?"

देव ने कहा—"संकट तो यही है कि आप सरकारी नौकर को सरकार समझ लेते हैं लेकिन सरकारी नौकर सरकार नहीं होता। वह अपने महकमे में कुर्सी पर बैठा हो तो सरकार होता है परन्तु दूसरे महकमे में काम पड़ने पर जनता बन जाता है। सरकारी नौकर आठ घंटे सरकार होता है और सोलह घंटे जनता। जब सरकारी नौकर नित्य जीवन में परेशान होता है तो सरकार से असंतोष अनुभव करता है। रिश्वत देकर अपना काम चलाने वाला दूसरे क्षेत्रों में परेशान होता है तो सरकार से असंतोष अनुभव करता है। घी, चीनी, मैदे में मिलावट करने वाला जब धोखे में नकली दवाई खरीदता है तो सरकार से असंतोष अनुभव करता है। अव्यवस्था, भ्रष्टाचार और सार्वजनिक हानि से व्यक्तिगत परेशानी सब अनुभव करते हैं और अव्यवस्था, भ्रष्टाचार को बढ़ाने में सहयोग देते हैं।"

ज़हीर ने विस्मय प्रकट किया—"अव्यवस्था ओर भ्रष्टाचार बढ़ने में लोग सहयोग कैसे देते हैं? सर्वसाधारण पर आप यह इलज़ाम कैसे लगा सकते हैं? वही बेचारे तो भुगतते हैं।"

तप्पी ने ज़हीर को उत्तर दिया—"तुम्हीं ने कहा था कि पब्लिक के नुकसान

की फिक्र में सिरदर्द लों और पब्लिक को दुश्मन बना लो। सार्वजनिक नुकसान को देख कर न बोलने का मतलब ऐसा नुकसान करने वालों का हौंसला बढ़ाना है या नहीं ? तुम समझते हो सार्वजनिक सम्पत्ति की रक्षा करना सरकार का काम है, जनता अपने नुकसान की उपेक्षा कर सकती है। सरकार आखिर है कौन ? व्यवस्था को चालू रखने के लिये नियत किये गये कुछ लोग ही तो सरकार हैं। उन की गिनती कितनी है ? नुकसान करने वाला जनता में से है। जनता उपेक्षा से उस की सहायता करेगी तो सरकार कर ही क्या सकती है ? एक ओर जनता हो और दूसरी ओर सरकार और सरकार का प्रत्येक व्यक्ति भी जनता हो तो जनता को हानि पहुंचाने की लड़ाई में सरकार जीतेगी या जनता और जनता की ऐसी जीत का अर्थ आत्महत्या होगा या नहीं !"

कपूर ने भी समर्थन किया—"सिद्धान्त रूप से तो यह बात ठीक है कि किसी भी गैरकानूनी काम के परिणाम से अन्ततः अधिकांश जनता का ही नुकसान होगा।" और शंका प्रकट कर दी, "परन्तु व्यवहारिक रूप से जनता क्या कर सकती है ? क्या जनता सरकार के कामों में हस्ताक्षेप किया करे ?"

देव ने उत्तर दिया—"हस्ताक्षेप का अर्थ तो विरोध के लिये अड़ंगा डालना होता है। आधी रात में आप को सन्देह हो जाये कि पड़ोसी के घर में सेंध लगाई जा रही है। उस समय उन्हें चेतावनी देना हस्ताक्षेप नहीं कहा जायेगा। पड़ोसी से हमारा सद्भावना का नाता होता है परन्तु सार्वजनिक हित, सार्वजनिक सम्पत्ति और व्यवस्था की रक्षा से हम सब का व्यक्तिगत नाता और सम्पर्क है। सार्वजनिक हानि करने वालों के निर्भय हो जाने और व्यवस्था में ढिलाई आ जाने से सब भले आदमियों की व्यक्तिगत सुरक्षा और स्वतंत्रता के लिये खतरा बढ़ता है। ऐसी स्थिति का फायदा केवल चोरी-चकारी और धांधली के लिये तैयार रहने वाले ही उठा सकते हैं। सार्वजनिक हित को परायी बला समझना अपने लिये भय उत्पन्न करना है।"

तप्पी बोला—"सार्वजनिक सम्पत्ति और व्यवस्था की रक्षा में सहयोग को हस्ताक्षेप समझ लेने का अर्थ है कि सरकार या शासन व्यवस्था से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि शासन व्यवस्था के प्रति हमारा कोई उत्तरदायित्व नहीं तो व्यवस्था पर हमारा कोई अधिकार भी नहीं। तब हम शिकायत ही क्या कर सकते हैं ?"

जहीर ने विस्मय प्रकट किया—"हमारा अधिकार क्यों नहीं ? सार्वजनिक

सुविधाओं और सुव्यवस्था के लिये लाखों रुपया कौन दे रहा है ? क्या जनता नहीं दे रही ? हम एक पान खाते हैं, एक सिगरेट पीते हैं, रोटी का एक कौर खाते हैं तो हर बात में सरकार और व्यवस्था चलाने के लिये कर के रूप में खर्चा देते हैं, तब भी हमें अव्यवस्था के लिये शिकायत करने का अधिकार नहीं !"

देव ने उत्तेजना में मेज़ पर हाथ मारा—"हमें तो लगता है कि आजकल प्रत्येक व्यक्ति अपने ऊपर जो कुछ खर्च करता है, उसका तिहाई, चौथाई सरकार के लिये चला जाता है। सरकार और व्यवस्था हमारे खून और पसीने से ही चल रही है। हम उसमें शिथिलता देख कर उपेक्षा कैसे कर सकते हैं ? इस उपेक्षा का अर्थ है, अपने अधिकार और सुरक्षा की उपेक्षा करना।"

तप्पी बोला—"आप सरकार के प्रति उत्तरदायित्व और सरकार से अधिकार की बात कर रहे हैं, परन्तु सरकार है क्या ? सरकार शब्द से पुरानी ध्वनि या भावना तो भय की और किसी के आधीन रहने की है। निरंकुश सामन्तों और राजाओं के ज़माने में सरकार जनता और देश की स्वेच्छाचारी मालिक होती थी। उस सरकार से डरने और उस की खुशामद के सिवा कोई चारा न था। अंग्रेज़ी सरकार का रूप और व्यवहार भी हमारे लिये वैसा ही था परन्तु आज सरकार क्या है ? आप सरकार खुद बनाते हैं। यदि आप सार्वजनिक हित को अपना ही हित और कर्त्तव्य समझें और उसकी उपेक्षा न करें तो आप जैसी चाहें सरकार बना सकते हैं...।"

ज़हीर ने विद्रूप कर दिया—"जी हां, पिछले चुनाव में आपने क्या कर लिया ?"

तप्पी ने उत्तर दिया—"यदि सार्वजनिक हित और कर्त्तव्य की चेतना होती और उपेक्षा न करते तो जो आप उचित समझते कर सकते थे। जिन्हें आप स्वार्थी समझते हैं, वह तो सब कुछ कर सकते हैं। जो अपने आपको निस्वार्थ समझते हैं, वे सार्वजनिक हित की उपेक्षा करते हैं। ऐसे कर्त्तव्य की उपेक्षा तो आत्मघाती स्वार्थ है। आप कुछ नहीं करना चाहते क्योंकि उसमें अपना स्वार्थ नहीं समझते, उसे परायी बला समझते हैं।"

ज़हीर चमक कर बोल पड़ा—"हम लोग केवल सार्वजनिक हित की ही उपेक्षा नहीं करते बल्कि अपने हित के लिये कुछ करने में दूसरों का भी भला होने की आशंका देखते हैं तो उसे परायी बला समझ लेते हैं और चुप रह जाते हैं। गली में गंदगी देख कर जानते हैं, स्वास्थ्य को भय है परन्तु यह सोच कर

कि दूसरों को भी तो भय है, संतुष्ट रह जाते हैं। यही प्रवृत्ति राजनैतिक क्षेत्र में काम करती है। ऐसे लोगों से आप सार्वजनिक हित की क्या आशा करेंगे ?

"आप को अपने हित के लिये आवाज़ उठाने का और सरकार बनाने में भाग लेने का अवसर है। आप सही चेतना जगाने में सहयोग क्यों नहीं देते, इसलिये कि उससे आप अपना सम्पर्क नहीं समझते ! बाद में शिकायत कर सकने का संतोष चाहते हैं ! विदेशी शासन हम लोगों में शिकायत करके संतोष पा लेने की अजीब आदत छोड़ गया है। हमारा सामाजिक व्यवहार तो ख्याली आशिकों जैसा है—'फिर दिल में क्या रहेगा, जब तमन्ना निकल गयी'।"

तप्पी फिर बोल पड़ा—"आप जानते हैं कि इस समय सुव्यवस्था और सार्वजनिक हित के प्रति जनता की उपेक्षा का परिणाम बहुत भयानक हो सकता है। देश की आवश्यकताएं पूरी करने के लिये, जनता की असन्तोषजनक आर्थिक अवस्था सुधारने के लिये सरकार को उत्पादन का समाजवादी ढंग अपनाना पड़ रहा है और महत्वपूर्ण उद्योग-धंधों को पब्लिक सैक्टर (सार्वजनिक नियंत्रण) में लेना पड़ रहा है। उस अवस्था में यदि हमारी जनता का दृष्टिकोण व्यक्ति-वादी रहा या जनता सार्वजनिक प्रश्न या हित को परायी बला समझती रही तो असफलता की जिम्मेवारी किस पर होगी ? व्यक्तिवादी दृष्टिकोण हमारी राष्ट्रीय आर्थिक योजनाओं को, समाजवाद को कैसे सफल होने देगा !"

कपूर बोल उठा—"क्यों, सरकार उत्पादन पर अपना नियंत्रण कायम करेगी तो उस की सफलता-असफलता के लिये जिम्मेवार भी होगी।"

तप्पी झुंझला उठा—"सरकार है कौन ? जनता सरकार नहीं है ? सरकारी नौकर जनता नहीं हैं ? यदि सब का दृष्टिकोण व्यक्तिवादी होगा, जैसा आज-कल है तो कोई भी सार्वजनिक हित से, अपने साथियों की शिथिलता से अपना वास्ता नहीं समझेगा, सार्वजनिक सम्पति की हानि होती देख कर बोलना पराई बला सिर लेना समझेगा। आप ऐसा करेंगे तो सरकारी नौकर भी ऐसा करेंगे। वे दूसरों को उदाहरण मान कर जितना सम्भव होगा, श्रम से बचना चाहेंगे, अधिक से अधिक तनखाह लेना चाहेंगे। दोनों बातों में जनता की हानि है। परिणाम क्या होगा ? सार्वजनिक हित, सब का राज या समाजवाद तो तभी सफल हो सकता है जब व्यक्ति समाज के हित में अपने हित समझे। जो व्यक्ति समाज और व्यवस्था की समस्याओं को परायी बला समझता है, वह वास्तव में **अपराधी है।"**

सुरेश ने निराशा की उत्तेजना से अपनी बात सुनाने के लिये हाथ उठाकर एलान किया—"इस डेमोक्रेसी की न्याय-व्यवस्था में धांधली करने वालों को कोई बाधा और भय है ही नहीं, लोग स्वार्थ में अंधे हैं। मिनिस्टर और अफसर अपने स्वार्थ की बात सोचते हैं। ऊपर से बरसने वाला स्वार्थ और धांधली छन कर समाज के सभी स्तरों में उतरती चली जाती है। देश का भला तो केवल जबर्दस्त डिक्टेटरशिप से ही हो सकता है।"

विष्णु सुरेश से भी अधिक निराशा से बोला—"इस वोट के राज्य में मेहतर तक की शिकायत कीजिये, कुछ नहीं हो सकता। जमादार मेहतर को क्या कहे, वह मेहतर से रिश्वत लेता है। हेल्थ-आफिसर जमादार को क्या कहे, वह खुद हरामखोरी करना चाहता है और अपने मातहत से नाजायज़ काम लेना चाहता है। डायरेक्टर के पास हेल्थ-आफिसर की शिकायत कीजिये तो हेल्थ-आफिसर का रिश्तेदार एम० एल० ए० होगा या वह किसी मिनिस्टर के साले का जमाई होगा।

"भैया, खोंचे वालों को सड़क की थूक-मूत सनी धूल से भरे सौदे लोग-बाग को खिलाने का हक है क्योंकि वह ड्यूटी के कान्स्टेबिल और 'हेल्थ' के जमादार को दस्तूर में दुअन्नी देते हैं। रिक्शे वाला दुअन्नी की सलामी देता है तो उसे ट्रैफिक का रास्ता रोक सकने और एक्सीडेंट करने का हक हो जाता है। दुअन्नी-चवन्नी की रिश्वत के मोल अनेक लोगों के प्राण चले जाते हैं। प्रजातंत्र का मतलब ही धांधली की स्वतन्त्रता है। धांधली से बलिदान वही लोग हो रहे हैं, जिन्हें केवल अपनी मेहनत का भरोसा है और जो धोखा देने के अवसर का मोल नहीं दे सकते।"

सुरेश फिर बोल पड़ा—"तुम वही बात कह रहे हो जो हम कह चुके हैं। धांधली वह रोक-टोक सकता है जो खुद निस्वार्थ हो और जिसे धांधली करने वालों की नाराजगी का भय न हो।"

तप्पी ने सुरेश को टोक दिया—"तुम तो निस्वार्थ और निर्भय हो, तुम धांधली की रोक-टोक क्यों नहीं करते? बस आराम से बैठ कर निराशा से शिकायत ही कर सकते हो!"

सुरेश झुंझला उठा—"हम क्या करें, मंत्री के पास जाकर शिकायत भी करें तो मंत्री क्या निस्वार्थ और निर्भय है? उसे सब से बड़ा लोभ मंत्री बने रहने का है और भविष्य में वोट न पाने का भय है। न्याय तो वह कर सकता

है जो स्वयं बेलाग और निर्भय हो। जो वोट के लिये लोगों के सामने झोली पसारे घिघियाते फिरते हैं—हमें वोट दो, वे किस बूते पर निर्भय होकर न्याय करेंगे ? असल धांधली तो वोट का राज ही है। डिक्टेटरशिप के बिना कोई इलाज नहीं।"

देव चुप न रह सका—"तो फिर सब से ज्यादा न्यायी तो नादिरशाह और चंगेज खां रहे होंगे या तुम्हारे पुराणों के राजा वेणु, कंस और रावण को व्यवस्था ठीक करने के लिये बुलवा लिया जाय। तब आपके ख्याल में धांधली बन्द हो जायगी क्योंकि आपको धांधली की शिकायत करने का साहस और अवसर ही नहीं रहेगा।"

तप्पी और बनर्जी ने देव के समर्थन में कहकहा लगाया और बनर्जी ने सुरेश को चुनौती दी—"अच्छा दोस्त, चलो तुम्हीं को डिक्टेटर मान लिया। बोलो, धांधली कैसे बन्द करोगे ? तुम सब शासन और व्यवस्था अपने हाथ में ले लो !"

सुरेश चिढ़ कर बोला—"हम तो सब ठीक कर दें लेकिन हमें कौन डिक्टेटर बनाता है ?"

तप्पी और भी जोर से हंसा—"यह खूब रही, डिक्टेटर तो आप बनेंगे लेकिन डिक्टेटर बनायें आपको हम और आप हमारा ही मुंह बन्द कर दें ! डिक्टेटर बनना है तो वैसे ही बनो जैसे नादिरशाह बन गया था; हिटलर, मुसोलिनी और स्तलिन बन गये थे।"

विष्णु सुरेश की ओर से बोला—"नादिरशाह डिक्टेटर बन गया था क्योंकि उस के पास फौज थी, वह ज़माना दूसरा था। हिटलर, मुसोलिनी क्या खुद डिक्टेटर बन गये थे ? उनकी पार्टियों ने उन्हें डिक्टेटर बनाया था। डिक्टेटरशिप सैनिक शक्ति हाथ में हुये बिना नहीं हो सकती।"

तप्पी ने पूछा—"हिटलर और मुसोलिनी को उनकी पार्टियों ने डिक्टेटर बनाया। डिक्टेटरशिप उनकी पार्टियों की थी या खुद हिटलर और मुसोलिनी की ? इस देश में आप किस पार्टी की डिक्टेटरशिप चाहेंगे ? किसी भी पार्टी की डिक्टेटरशिप में अन्य सब पार्टियों का दमन अवश्य होगा। यह बताइये कि जर्मनी और इटली ने डिक्टेटरशिप में क्या पाया ? आपने नाज़ियों और फासिस्टों के अमानुषिक अत्याचारों के किस्से नहीं सुने ? प्रजा की अनुमति और सहयोग के बिना शासन का प्रयोजन प्रजा के दमन के अतिरिक्त और क्या हो सकता है ?"

देव बोल पड़ा—"क्यों साहब, अब कांग्रेस पार्टी की डिक्टेटरशिप में क्या

कमी है ? कांग्रेस के नेता किस बात में जनमत की परवाह कर रहे हैं ? वे प्रजा द्वारा अस्वीकृत व्यक्तियों को भी मंत्री और शासक बना सकते हैं । एक बार आपने बहुमत से पांच वर्ष के लिये अपना भाग्य उनके हाथ में दे दिया है, वे जो चाहे कर सकते हैं ।"

ज़हीर ने अंग्रेजी में आपत्ति की—"नहीं, कांग्रेस के शासन को आप डिक्टेटर-शिप नहीं कह सकते हैं । डिक्टेटरशिप सैनिक शासन द्वारा ही होती है ।"

देव ने कहा—"यह कोई जरूरी बात नहीं है । शासक दल का काम जब तक सिविल पावर (नागरिक शासन के अधिकार और शक्ति) से चल सकता है, वे सैनिक शक्ति का उपयोग क्यों करें ? मक्खी और मच्छर यदि फ्लिट से मर सकते हैं तो उनके ऊपर मशीनगन और तोप चलाने की क्या आवश्यकता है ? सैनिक शक्ति सरकार के हाथ में है । आवश्यकता पड़ने पर वे उसका भी उपयोग कर सकती है । सभी सरकारों के अधिकार और शासन सदा निरंकुश और अक्षुण्ण होते हैं ।"

बनर्जी ने माथे पर त्योरियों से गम्भीरता का संकेत कर कहा—"बाबू, मिलिटरी पावर (सैनिक शक्ति) से शासन चलाना मज़ाक नहीं है । यदि सेना शासन का अवसर पाकर मन्त्रियों को ही जेल में डाल दे तो डिक्टेटरशिप मंत्रियों की रहेगी या सेना की होगी ?"

ज़हीर हंस पड़ा—"अमां, मिलिटरी डिक्टेटरशिप या गवर्नमेंट मिलिटरी के हाथ में चली जाने से धांधली खत्म हो जायगी ? अब एम० एल० ए० के रिश्तेदार को परमिट मिलता है, तब जमादार और कप्तान के रिश्तेदार को मिला करेगा । जो करतूत अब हेड कांस्टेबिल और दारोगा करते हैं सो हवलदार और सूबेदार किया करेंगे । जो मन्त्री करते हैं वह कर्नल-जनरल करेंगे । फर्क इतना होगा कि अब आप कानून की दुहाई दे सकते हैं, जनमत का भरोसा कर सकते हैं, तब सिपाही का हुक्म ही सब कुछ होगा । एतराज़ करेंगे तो गोली खायेंगे । सिपाही खुदा का फरिश्ता तो होता नहीं, आप ही के गांव-बिरादरी का आदमी होता है । किसी को चाचा, किसी का भतीजा, किसी का बहनोई, किसी का साला, किसी का दोस्त तो किसी का दुश्मन भी । जो सरकारी नौकर करते हैं, सो वह करेगा और हमारे सीने पर बन्दूक रख कर करेगा । शक हो तो किसी भी डिक्टेटरशिप में जाकर देख आइये, बस इतनी ही राहत आप को डिक्टेटरशिप में मिलेगी ।"

बनर्जी ने चिन्ता से पूछा—"और यदि मिलिटरी में भी दलबन्दी हो गयी तो क्या होगा ? प्रजातन्त्र में तो एक दल दूसरे दल से शासन अधिकार छीनना चाहता है तो वोटों से जंग होती है । सैनिक दलों में संघर्ष होगा तो फैसला तोप-तलवार से होगा । एक दल के आदमी हमारे मोहल्ले में आकर छिपेंगे तो दूसरा दल हमारे मोहल्ले पर गोलाबारी करेगा और सब धांधली का अन्त हो जायगा ।"

तप्पी ने उस आतंक की आशंका का निवारण करने के लिये कहा—"प्रजातन्त्र में कोई भी सरकार पूर्ण निरंकुश और डिक्टेटर नहीं हो सकती क्योंकि शासन की अवधि का अंकुश उन पर रहता है, विरोधी दल उन की आलोचना कर सकता है । पूर्ण डिक्टेटरशिप तो तभी हो सकती है जब अवधि और जनमत का अंकुश न रहे । सरकार पर अवधि का अंकुश, प्रजा को असन्तोष प्रकट करने का और व्यवस्था में परिवर्तन और सुधार करने का अवसर देता है ।"

देव ने समर्थन किया—"प्रजातन्त्र में यदि सरकार खराब है तो उसे सुधारने का अवसर तो प्रजा के हाथ में रहता है । प्रजा अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठा सकती है । मन्त्री स्वार्थी हो सकते हैं तो डिक्टेटर और राजा स्वार्थी, ऐयाश और बेइमान नहीं हो सकते ? तुम्हीं बताओ, इतिहास में कितने निरंकुश शासक स्वार्थी और कितने परमार्थी हुये हैं ? सरकार और शासन के निर्माण में कोई भी अधिकार न होने पर प्रजा क्या कर सकेगी ? तब शायद संतोष इसी बात से होगा कि शिकायत का अवसर नहीं है ।"

सुरेश ने फिर निराशा प्रकट की—"कौन करेगा सुधार ? नया चुनाव आ रहा है । फिर स्वार्थी लोग चुनाव में आगे बढ़ जायेंगे । व्यक्ति बदल भी जायेंगे तो धांधली की परम्परा तो नहीं बदल जायेगी ! हम तो ऐसे चुनावों के झंझट में नहीं पड़ते ।"

"आप को अपने ऊपर विश्वास नहीं तो आप चुनावों को झंझट ही समझेंगे ?" तप्पी ने कहा ।

देव बोल पड़ा—"अपने ऊपर विश्वास और भरोसा नहीं इसलिये डिक्टेटर का भरोसा करना चाहते हो ! डिक्टेटर का ही क्या भरोसा, भगवान का भरोसा करो !

"आप को सिर्फ शिकायत करने से मतलब है । पहिले धांधली का अवसर चाहने वालों को मौका दीजिये, फिर शिकायत कीजिये । चुनाव और व्यवस्था

के निर्माण को परायी बला का झंझट समझना क्या स्वार्थ का दृष्टिकोण नहीं है ? समाज से अपना कोई सम्बन्ध न समझना ही सब से बड़ा स्वार्थ है ।"

देव ने क्षोभ प्रकट किया—"मुसीबत है कि लोग सोचते ही व्यक्ति, बिरादरियों या जातियों के रूप में हैं । जब वोट बिरादरी के नाम पर, साम्प्रदायिक लिहाज-मुलाहजे की संकीर्ण और स्वार्थी भावना से दिये जायेंगे तो परिणाम क्या होगा ?"

तप्पी ने निराशा प्रकट की—"इस बार इलेक्शन में केवल सौ में तीस व्यक्तियों ने वोट दिये हैं, क्यों ? सौ में सत्तर व्यक्तियों ने परवाह क्यों नहीं की ? शासन की नीति बनाने का उत्तरदायित्व जिन्हें सौंपा जा रहा है, वे भरोसे के आदमी हैं या नहीं ? सर्वसाधारण को व्यवस्था ठीक रखने और सार्वजनिक प्रश्नों से कोई वास्ता नहीं । वे परायी बला सिर नहीं लेना चाहते । भरोसा है, कठिनाई होने पर ले-दे कर काम निकाल लेंगे । ऐसे लोग अपने अधिकार और न्याय का नहीं, धांधली का ही भरोसा करना चाहते हैं । जो धांधली को परायी बला समझ कर उसकी उपेक्षा करते हैं, वही धांधली को प्रोत्साहन देने के अपराधी हैं ।"

श्रृङ्गार का प्रयोजन

भुवन ने पत्नी के साथ उसके मायके के बराम्दे में कदम रखा तो भीतर बैठक में कई लोग बोलते सुनायी दिये। मिश्र जी और पड़ोसी मुंशी कालीप्रसाद ने एक साथ—आओ! आओ! कह कर उनका स्वागत किया

गली में मुंशी जी का भी आदर है। मुंशी जी के प्रति आदर से गली के नौजवान और बच्चे उनकी बड़ी बहिन को बुआ पुकारते हैं। बुआ बैठक में दीवार के साथ खड़ी थीं। वे गली में मिश्र जी को ही बड़ा मानतीं हैं। उनके प्रति लिहाज में आंचल होठों के सामने किये, अपने साधारण स्वभाव के विरुद्ध स्वर को यथाशक्ति दबाये कुछ कह रही थीं। भुवन और विद्या के आ जाने से उन की बात कट गई थी। अपनी बात पूरी करने के लिये बोलीं—"कूल्हे पर बहुत चोट लगी है, हम तो देख आयी हैं।"

विद्या ने कौतूहल से बुआ को सम्बोधन किया—"बुआ, किसे चोट आयी, क्या हुआ ?"

विद्या की छोटी बहिन मुन्नी ने विद्या को बता दिया—"सिन्हा बाबू की छोटी लड़की पद्मा है न, जो टेलीफोन एक्सचेंज में काम करती है, बेचारी रिक्शा से गिर पड़ी।"

बुआ सत्य का दमन नहीं सह सकीं। मिश्र जी के लिहाज के बावजूद स्वर को दबा न सकीं—"गिर क्या पड़ी लौंडों ने छेड़खानी करके गिराया है। रामसहाय ने गली के मोड़ पर देखा है। बात छिपा रहे हैं।"

मिश्र जी कुछ झुंझलाकर बोले—"छिपायें नहीं तो क्या अपनी बदनामी का ढोल पीट दें ?"

भुवन ने अंग्रेजी में आपत्ति की—"डैडी, अन्याय की शिकायत न करने का मतलब तो अन्याय को प्रोत्साहन देना है।"

मुंशी कालीप्रसाद अंग्रेजी बोल सकने का अवसर नहीं चूकते । उसकी गर्दन ऊंची हो गयी—"हम तो कहते हैं, ऐसी घटना की रिपोर्ट जरूर होनी चाहिये । गुंडागर्दी बढ़ती जा रही है । बिलकुल अंधेर मच जायगा । शरीफ औरतों का बाहर निकलना असम्भव हो जायगा ।"

मिश्र जी मुंशी जी की नीयत जानते हैं, इसलिये चिढ़ गये—"अंधेर क्या मच जायेगा, अब क्या अंधेर नहीं है ? पुलिस में रिपोर्ट लिखा दें । पुलिस लफंगे लड़कों से दस-बीस रुपये खा लेगी और कुछ नहीं करेगी । कह देंगे—सबूत क्या है ? मामला अदालत में चला भी जाये तो कौन शरीफ आदमी अपनी लड़की को अदालत में पेश करेगा ? अपनी बदनामी कराओ, जगहंसायी कराओ ।"

भुवन ससुर को डैडी पुकारता है । पिता की तरह उन का आदर करता है और वैसे ही लाड़ में निधड़क बात भी कह देता है । बोल पड़ा—"डैडी, इसमें लड़की की क्या बदनामी और जग-हंसायी ? बदनामी और जग-हंसायी तो उसकी होगी जिस पर बदतमीजी और आवारापन का इलजाम लगेगा ।"

विद्या भी पति के प्रोत्साहन से निधड़क हो गयी है । जब से नौकरी कर ली है तब से जबान और भी खुल गयी है । बोल पड़ी—"स्त्री को अन्याय और दुर्व्यवहार की शिकायत करना भी गुनाह है । पुरुष तो अपने सम्मान की रक्षा के लिये सिर काट लेने को तैयार रहते हैं । यह अजब तमाशा है कि स्त्री पर जुल्म हो, उसका अपमान हो, वह शिकायत करे तो बदनामी भी उसी की हो । स्त्री बेचारी इज्जत की रक्षा के लिये मुंह सिये रहे; बेइज्जती निगल जाय ।"

भुवन बोल पड़ा—"लोग अपनी बहू-बेटी के साथ अन्याय और दुर्व्यवहार होने पर बहू-बेटी का अपमान नहीं समझते । स्त्री का तो कुछ व्यक्तित्व ही नहीं होता । अपमान होता है बहू-बेटी के घर के मर्दों का । बहू-बेटी का स्थान बाजार और अदालत में नहीं है । परिवार का लड़का शिकायत करने अदालत में जाय तो परिवार का अपमान नहीं होता । स्त्री और पुरुष के लिये सम्मान के दृष्टिकोण अलग-अलग हैं ।"

मुंशी जी इस प्रश्न पर भुवन और विद्या का समर्थन नहीं कर सके परन्तु अपनी बात रखने के लिये कह दिया—"दुर्व्यवहार की शिकायत तो होनी ही चाहिये, नहीं तो उसकी रोक-थाम कैसे होगी !"

भुवन ने फिर ससुर को सम्बोधन किया—"घर में सेंध लग जाये, चोरी हो जाये तो पुलिस में शिकायत की जाती है या नहीं ? उस हालत में लोग

अदालत में जाने पर जग-हंसायी नहीं समझते ।"

मिश्र जी ने दामाद को लाड़ से डांट दिया—"बेटे, तुम तो बात के लिये बात कह देते हो, प्रेक्टिकल बात नहीं सोचते । ऐसे गुंडों का तो इलाज है कि चार भले आदमी जूतियों से वहीं उनका मुंह तोड़ देते । भैया, अपनी पत अपने हाथ है, बहू-बेटियां ऐसी स्थिति से दूर ही रहें ।"

विद्या ने मुंह फेर कर बड़बड़ा दिया—"स्त्रियां बेइज्जती के भय से घरों कैद हो जाय, यह अच्छा न्याय है ! गुण्डागर्दी करें पुरुष, कैद का दण्ड भोगें स्त्रियां ।"

मिश्र जी ने बेटी और दामाद की मुद्रा से उत्तेजक बहस की आशंका अनुभव की । वे मुंशी जी की ओर घूम कर बोले—"भाई मुंशी जी, हम जरा लेटेंगे । ब्लडप्रेशर ने बहुत परेशान कर दिया है ।" मिश्र जी उठ गये । ऐसे समय वह ब्लडप्रेशर की शरण ले लेते हैं ।

मिश्र जी आंगन में चले गये तो बुआ ने अपने बड़े के लिहाज से मुक्ति पाई । आंचल होठों के आगे से हटा दिया और बोल पड़ीं—"भैया जी ने ठीक कहा, अपनी पत अपने हाथ होती है । इनकी लड़कियां भी तो तूफान उठाये हैं । इन्हें देख कर कोई क्वांरी कह सकता है । इनके जूड़े-चुटिया देखो ! सिर पर आंचल पल भर को नहीं टिक सकता । जरा इनके फैसन देखो, बिलाउज-झम्फर देखो ! इन्हें लोग छेड़ेंगे नहीं तो और क्या !"

विद्या भी फिट और चुस्त ब्लाउज पहिने थी, कैसे चुप रह जाती । उसने बुआ को जवाब दिया—"फैशन क्या अभी हो गये हैं; पहले बनाव-सिंगार नहीं होता था ? पहले बटने नहीं मले जाते थे, सौ-सौ चुटियां बना कर सिर नहीं गूंथे जाते थे ? मेंहदी-महावर नहीं लगायी जाती थी ? सिर से पांव तक गहने नहीं पहने जाते थे कि एक कदम चलें तो झनक-झनक सारा घर झनझना उठे ।"

भुवन ने पत्नी को टोक दिया—"चूड़ियां, झांझर, बिछुये तो मर्द स्त्रियों को जबरदस्ती पहनाते थे । बड़े लोगों की तीन-तीन, चार-चार पत्नियां होती थीं । सौतें आपस में लड़ती भी होंगी । चूड़ियां होती हैं सुहाग का चिन्ह ! चूड़ी टूट जाने के भय उन्हें मार-पीट करने से रोके रहता था । झांझर-पायल का फायदा यह था कि पत्नी पर-पुरुष से अभिसार के लिये रात में कदम उठाये तो आहट हो जाये ।"

विद्या ने पति को मुंह चिढ़ा कर उत्तर दिया—"जी हां, बड़े आये ! कदम

उठाने वाली को कौन रोक सकता था ! ऐसा करने वाली लच्छे-झांझर उतार करने पहले रख देती होंगी, नहीं तो बांध लेती होंगी । यह क्यों नहीं कहते कि मर्द रनिवास की रूनन-झुनन पर रीझते रहते थे ।"

बुआ पति-पत्नी की चुहल का रस लेकर मुस्करा दीं और बोलीं—"अरे भाई, पुराने जमाने में फैसन-सिगार करती थीं तो अपने मर्द के लिये करती थीं । घर का काम निबटा कर, सांझ को मर्दों के घर लौटने से पहले कंघी-चोटी कर ली, धोती बदल ली ।"

भुवन बोल पड़ा—"बुआ ने बिल्कुल ठीक कहा । सामन्त काल में स्त्रियां अपने मर्दों के लिये ही श्रृंगार करती थीं । अब तो चाहे घर में फूहड़ बनी रहें, बाहर निकलने से पहले जरूर टिप-टाप बन जाती हैं ।"

बुआ ने स्वीकार किया—"हां, और क्या ? अब तो सोलह-सिगार करके बाजार में घूमती हैं, बाजारू ही हो गयीं । तभी तो सड़क-बाजार में छेड़खानी, छिनरा होता है, झगड़े होते हैं ।"

मुन्नी स्वगत बोल उठी—"यह खूब रहा; जो ढंग से पहिने-ओढ़े हो, उससे छेड़खानी कर ली जाये !"

बुआ मुन्नी की उपेक्षा कर कहती चली गयीं—"मर्दों को बाद में कहो, पहले इन्हें समझाओ !"

विद्या ने गली के मर्दों को ताना दिया—"जी हां, स्त्री तो अपने मर्द के स्वागत में सांझ को सिगार करके बैठे और मर्द जी घर लौट कर अपना कुर्ता भी उतार कर खूंटी पर लटका दें ।"

बहिन के मजाक पर मुन्नी मुस्करा दी—"इसीलिये तो समझदार स्त्रियां मर्दों के संतोष के लिये श्रृंगार छोड़कर, आत्मसम्मान के लिये श्रृंगार करने लगी हैं ।"

भुवन ने मुन्नी और विद्या की ओर कनखियों से देखा और उपेक्षा के नाट्य से कह दिया—"मर्द का क्या है ! मर्द को तो अपने ऊपर भरोसा रहता है परन्तु स्त्री का बल रिझा सकने में ही होता है, इसीलिये तो श्रंगार करना उस की प्रकृति बन गई है । स्त्री पहले एक तरह श्रंगार करती थी, अब दूसरी तरह करती हैं । जिन आदिम जातियों में कपड़ा पहिनने तक की तमीज़ नहीं है, स्त्री वहां भी श्रंगार करती है । वह अपना बदन गुदवा लेती हैं, अपने बदन को रंग लेती हैं, नाक-कान में छेद करके कुछ लटका लेती हैं । जानती है, प्रकृति ने उसे

नर की तरह सुन्दर नहीं बनाया।"

मुन्नी ने जीजा की चुनौती का उत्तर दिया—"पुरुष अपने श्रृंगार के लिये क्या नहीं करते ? आदिम अवस्था में रहने वाले नर कपड़े पहनना नहीं जानते परन्तु केशों में पर खोंस लेते हैं। गले में शंख, सीप, कौड़ियां, सुअर और शेर के दांतों के हार पहनते हैं। शिव जी महाराज क्या कम फैशनेबुल थे ? माथे पर चन्द्र-बिन्दु बनाते थे। जंगल में कुछ और नहीं पाते होंगे तो हड्डियों का ही हार पहन लेते थे। गले में सांप लपेट लेते थे और कमर पर शेर की खाल।"

मुन्नी के उत्तर से विद्या संतुष्ट नहीं हुयी। उसने मुंशी जी को सुना कर पति को उत्तर दिया—"हमें तो पुरुष ही अधिक बनाव-सिगार करते दिखायी देते हैं। स्त्रियां जेवर पहिनती थीं तो पुरुष भी कंठमाला और कानों में बाले पहनते थे। किसी पुराने राजा-महाराजा का चित्र देख लीजिये ! स्त्रियों के चोटी-जूड़े की बहुत चर्चा होती है। वे बेचारी तो जैसा बन पाता है, खुद कर लेती हैं। मर्दों के सिर सवांरने के लिये नाई चाहिये। हर पन्द्रहवें दिन इनके सिर की छंटायी होनी चाहिये। माथे पर दिखाने के लिये जुल्फें हों, गर्दन दिखा सकने के लिये बाल छोटे हों। कोई लड़की साल छः मास में बाब करा ले तो तूफान आ जाय। पुरुष को मुंह चिकनाने के लिये रोज सुबह साबुन-उस्तरा चाहिये। जूड़े के फैशनों की बहुत चर्चा होती है, अपनी मूंछों के फैशन तो गिनिये !"

मुंशी जी अपनी मूंछों पर कटाक्ष का उत्तर दिये बिना नहीं रह सके, बोले—"अजी साहब, मजाक एक बात है मगर लेडीज के फैशन तो नैशनल प्राबलम बन गये हैं और क्या नाम, दूसरी बातें ..." उन्होंने विद्या की ओर से आंख चुरा कर कह दिया, "पार्लियामेंट तक में इन के फैशनों की चर्चा हो गई है। प्राइम मिनिस्टर को भी इस बारे में बोलना पड़ा कि लेडीज़ को दफ्तरों में मर्दों के साथ काम करना है तो उन्हें संयम से ड्रेस करना चाहिये। कुछ तो बिलकुल लिहाज छोड़ कर ऐसे एक्साइटिंग ढंग से ड्रेस करती हैं कि भले आदमियों की नजरें नहीं उठ सकती।"

विद्या को क्रोध आ गया, उसने मुंशी जी को चुनौती दे दी—"एक्साइटिंग का मतलब क्या है ? प्राइम मिनिस्टर कौन होते हैं स्त्रियों की पोशाक के बारे में बोलने वाले ? स्त्रियों को क्या और कैसे पहनना-ओढ़ना चाहिये, यह बात स्त्रियां अपनी सुविधा या रुचि से निश्चित करेंगी या पुरुषों के आदेश से ?

स्त्रियों के ब्लाउज उन्हें बहुत खटकते हैं; प्राइम मिनिस्टर खुद इतनी फिट अचकन क्यों पहनते हैं ? मर्द अपने कंधे दिखाने के लिये कोट और अचकन में रुई और बुकरम नहीं भरवाते ? प्राइम मिनिस्टर योरुप की स्त्रियों की तरह अपनी पिंडलियां दिखाने के लिये हाथी की सूंड़ सा तंग पाजामा नहीं पहनते ?"

भुवन ने मुस्कराकर टोक दिया—"हां भाई, स्त्रियों की पोशाक पुरुषों के लिये उत्तेजक हो सकती है तो पुरुषों की पोशाक स्त्रियों के लिये उत्तेजक क्यों नहीं हो सकती।"

विद्या ने पति की चुटकी के उत्तर में मुंशी जी को और धमकाया—"स्त्रियां तो पुरुषों की पोशाकों पर कोई ऊधम नहीं मचातीं। पुरुष संयम न रख सकें तो स्त्रियों की पोशाकों को एक्साइटिंग कह दें। एक्साइट होने वाले तो पर्दे की ओट से पायल की झंकार सुन कर ही परेशान हो सकते हैं। आप को दूकान पर मिठाई लुभावनी लगे तो लूट लेंगे या हलवाई को दोष देंगे ? प्राइम मिनिस्टर पुरुषों के असंयम पर एतराज क्यों नहीं करते ?"

बुआ बहस कुछ समझ नहीं पा रही थी। पड़ोसी की लड़की का अपने भाई के सामने इतना बढ़-बढ़ कर बोलना उन्हें अच्छा नहीं लगा, बोल पड़ीं—"करो ! खूब फैसन करो ! हमें क्या है अप्सरा बन-बन कर बाजार में निकलेंगी तो छेड़खानी होगी, झगड़े होंगे, फजीहत होगी।"

मुन्नी तड़प उठी—"बुआ जी, सीता जी क्या बहुत फैशन करती थीं, रावण क्यों उन्हें उठा ले गया ? अहिल्या क्या बहुत लिपिस्टिक लगा कर बाजार जाती थीं, इन्द्र देवता ने उन्हें क्यों बहका लिया ? संयोगिता को पृथ्वीराज उठा कर ले गया। बेचारी पद्मिनी ने तो कभी महल से बाहर कदम नहीं रखा था तो उस पर भी मुसीबत आ गयी। यह तो पुरुषों की बर्बरता है। स्त्री पुरुष को अच्छी लग जाय, यह भी स्त्री का अपराध ! पुरुष संयम न रख सके तो फजीहत हो स्त्री की !"

विद्या चिढ़ कर बोली—"स्त्रियों के अच्छे लगने से पुरुषों को बेचैनी अनुभव होती है, इसलिये स्त्रियां घर से बाहर निकलते समय फूहड़ और अस्त-व्यस्त बन कर निकला करें ? पुरुष सभा-समाज में अच्छे, सम्मानित लगने के लिये क्या नहीं करते ? पुरुष अपने शरीर की बनावट के अनुसार अच्छे लगने का प्रयत्न करते हैं, स्त्रियां अपने शरीर की बनावट के अनुसार अच्छी लगने के लिये ढंग से पहने-ओढ़ें तो उच्छृंखलता हो जायगी ?"

बुआ होंठों पर हाथ रख कर बोलीं—"हाय राम, पराये मर्दों को अच्छी लगने का क्या मतलब ?"

"क्यों, आत्म-सम्मान भी तो होता है।" मुन्नी बोली।

विद्या ने पति की ओर कटाक्ष किया—"मर्द अपनी औरतों की परवाह ही कब करते हैं ? दूसरों की बीबियों पर ही नजरें दौड़ाते हैं।"

"मर्दों को क्या मजबूरी है कि पराई स्त्रियों को देख कर राय दें ?" मुन्नी ने कहा।

भुवन ने साली और पत्नी की बात पर मुस्कराहट दबाकर कहा—"अच्छा लगने और अच्छी लगने की प्रवृति तो स्वाभाविक है। भारतीय पुरुष घर में अच्छा लगने न लगने की चिन्ता नहीं करता। पत्नी को तो वह अपनी सम्पति समझता है, उसके सामने सम्मानित जान पड़ने और अच्छा लगने के प्रयत्न की क्या चिंता ? बाहर जाते समय पुरुष सज-धज जरूर करता है।

"पहले भारतीय नारी घर से बाहर जाती ही नहीं थी। बाहर जाते समय उसके सजने, श्रृंगार करने का प्रश्न ही नहीं था। अब वह घर से बाहर निकलने लगी है और घर से बाहर जाते समय सामाजिक औचित्य के विचार से सज-धज आवश्यक समझती है। वह भी सम्मानित और अच्छी लगना चाहती है परन्तु भारतीय पुरुष के संस्कारों में स्त्री अच्छी लगने का का एक ही अर्थ रहा है। उस ने स्त्री को किसी और दृष्टि से देखना सीखा ही नहीं। कोई स्त्री अच्छी लगते ही उसकी वही भावना जाग उठती है जो स्त्री के सम्बन्ध में उसके संस्कारों में रही है। उसने नारी को पुरुष की तरह काम करने वाला व्यक्ति—अध्यापक, लुहार, बढ़ई, पंडित, क्लर्क, डाक्टर, वकील नहीं समझा। नारी को उसने सदा हरम या जनाने की वस्तु ही समझा। जब भी या जहां कहीं भी भारतीय पुरुष को स्त्री सुन्दर या अच्छी लग जाती है, उसकी हरम या जनाने की भावना जाग उठती है। उसे जान पड़ता है—नारी उसे अनैतिकता के लिये निमन्त्रण दे रही है।"

उस ने पत्नी की ओर देख कर कह दिया—"जब स्त्री पुरुष की व्यक्तिगत उपयोगिता के लिये ही होती थी, उस का स्थान घर की चारदीवारी में ही था, तब स्त्री के पहनने-ओढ़ने का निर्णय पुरुष ही करता था। पुरुष अब भी वही संस्कार बनाये हुये हैं। स्त्री इस युग में घर से बाहर, समाज के कार्यों में बराबर हिस्सा ले रही है। वह राज्यों में मन्त्री, विधायक, राजदूत,

डाक्टर, वकील, अध्यापक, इंस्पेक्टर और दफ्तरों में क्लर्क—सभी काम कर रही है। वह केवल घर के उपयोग की वस्तु नहीं, पुरुष के समान उत्तरदायी बन गयी है परन्तु पुरुष स्त्री के लिये अपने से भिन्न नैतिकता बनाये रखने और उसके आचार-व्यवहार पर नियंत्रण रखने का मूर्खता भरा अहंकार नहीं छोड़ना चाहता।"

विद्या कह रही थी—"पुरुष सुन्दर लगने के लिये अपनी सज-धज में कम यत्न नहीं करते। कन्धों को आकर्षक बनने के लिये कोट और अचकन में रुई और बुकरम भरवाते हैं, चूड़ीदार चुस्त पायजामे से अपनी पिडलियां दिखाते हैं, तरह-तरह के बाल कटाते हैं, अनेक तरह की मूछें रखते हैं...।"

तप्पी का मित्र कुमार उसे बाहर ले गया था। तप्पी कुमार के साथ लौटा तो उसने बहस को चेताने के लिये पूछ लिया—"हां जीजी, क्या कह रही थीं... स्त्रियों को भी पुरुषों की पोशाक एक्साइटिंग लगती है?"

विद्या ने उत्तर दिया—"स्त्रियों को जो कुछ लगता हो परन्तु स्त्रियों ने कभी पुरुषों की पोशाक की या उन के बनाव-श्रृंगार की आलोचना और विरोध तो नहीं किया। न कभी गली-बाजारों में लड़कियों और स्त्रियों के पुरुषों को छेड़ने की घटनायें सुनी हैं।"

कुमार को बहस का प्रसंग मालूम नहीं था। उस की सहानुभूति सदा नारी जगत की ओर रहती है, बोला—"लफंगबाजी का अहंकार पुरुषों को ही है। पुरुष नारी के आकर्षण में व्याकुल और अधीर हो जाना अपना पौरुष समझते हैं और अपने साथियों में अपनी ऐसी उच्छृङ्खलता के प्रदर्शन को साहस समझते हैं। हमने तो कभी नहीं सुना कि लड़कियों ने लड़कों को देख कर आहें भरी हों या उनका पीछा करने लगी हों।"

विद्या और मुन्नी स्त्रियों के स्वतन्त्रता से पहन-ओढ़ सकने के दावे के उत्तर में स्त्रियों के शील की ऐसी प्रशंसा सुन कर चुप रह गयीं। भुवन के होंठ मुस्कान में दब गये। कुमार के गाम्भीर्य से समझ लेना कठिन था कि वह तुलना में पुरुषों को उच्छृंखलता का ताना दे रहा था या स्त्रियों के मन में पुरुषों के लिये आकर्षण के प्रति संदेह प्रकट कर रहा था।

भुवन ने कनखी से पत्नी को देखा और कुमार को सम्बोधन किया—"यार, तुम सचमुच पोंगे हो! तुमने कभी स्त्रियों और लड़कियों की आपसी बातें नहीं

सुनी ? हम ने ऐसी बातें सुनी हैं, स्त्रियों के मुख से भी सुनी हैं।" उस ने पत्नी की ओर कटाक्ष किया।

विद्या ने संकोच से होठों पर आंचल रख लिया। भुवन कहता गया—"लेकिन मित्र, स्त्री स्वभाव के बारे में तुम्हारी अपेक्षा कवि कालिदास और शेक्सपियर कुछ अधिक ही जानते होंगे कि स्त्री भी पुरुष के प्रति आकर्षण अनुभव करती है या नहीं ?"

भुवन मुन्नी की ओर घूम गया—"इन्हें 'अभिज्ञान शकुन्तलाम्' लाकर दिखा दो। कालिदास की शकुंतला, दुष्यंत की पहली झलक देख कर ही उलट गयी थी और स्वगत कहने लगी थी—इन्हें देख कर मेरे मन में न जाने क्यों ऐसी उथल-पुथल हो रही है जो तपोवन के निवासियों के मन में नहीं होनी चाहिये। मित्र, कालिदास और शेक्सपियर दोनों का और मनोवैज्ञानिकों का भी विचार है कि प्रणय का आकर्षण या अंकुर पहले नारी हृदय में ही होता है, तभी वह अधिक सफल होता है।"

कुमार ने कहा—"परन्तु स्त्रियां उसके लिये कोई प्रदर्शन नहीं करने लगतीं। वे स्वयं तो प्रेम निवेदन नहीं करतीं !"

भुवन मुस्कराया—"बरखुरदार, प्रेम-निवेदन के ढंग होते हैं। उसके लिये लज्जा का तीर मार देना काफी है; क्या जुलैखां यूसुफ पर आसक्त नहीं हुई थी ?"

मुंशी जी नौजवानों की बात में बोल उठे—"अजी, आप अपने देश और अपनी सभ्यता की बात कहिये !"

भुवन ने हाथ बढ़ा कर उत्तर दिया—"मुंशी जी, पार्वती ने ही शिव को पाने के लिये तपस्या की थी। यह बताइये, राधा ने पहले कृष्ण से प्रेम किया था या कृष्ण ने राधा से ?"

मुंशी जी ने असंतोष प्रकट किया—"आप भगवत प्रेम को आसक्ति से मिला रहे हैं !"

"आई एम सारी," भुवन ने क्षमा मांगी, "महाभारत में प्रमाण है, हिडिम्बा ने स्वयं ही भीम से प्रेम निवेदन किया था।"

मुंशी जी बोल उठे—"हिडिम्बा तो राक्षसी थी। राक्षसी ही पुरुष के प्रति अपना प्रेम प्रकट कर सकती है।"

विद्या ने पति को सम्बोधन कर मुंशी जी को उत्तर दिया—"यह खूब रही,

पुरुष किसी स्त्री को चाहे तो वीर और पराक्रमी समझा जाये, स्त्री पुरुष को चाहे तो राक्षसी और डायन समझी जाये !"

भुवन ने पत्नी की ओर से मुंशी जी को समझाया—"ऐसे संस्कार पुरुषों में स्त्रियों को अपनी सम्पत्ति बना कर रखने की इच्छा के कारण हैं। स्त्री की भद्रता और शील केवल चाही जाने में है। पुरुष स्वयं प्रेम निवेदन करने वाली स्त्री का विश्वास नहीं कर सकता। ऐसे स्त्री के साहस से पुरुष भयभीत हो जाता है—यह आज मुझ से प्रेम करती है तो कल दूसरे से भी कर सकती है। पुरुष ऐसी स्त्री को ही पत्नी बनाने योग्य समझता है जिसे स्वयं कोई इच्छा न हो। वह केवल पति की इच्छा-पूर्ति का साधन मात्र बनी रहे। स्त्री भी पुरुष की पसन्द की कसौटी को खूब पहचानती है इसलिये वह अपनी इच्छा प्रकट करना उचित नहीं समझती, अपना प्रयोजन पूर्ण करने के लिये पुरुष में इच्छा जगाने का प्रयत्न करती है। वह केवल इच्छा नहीं करती, आत्म-समर्पण करती है। वह सदा अपने आप को भीरू, अत्यन्त भोली दिखाने का यत्न करती है ताकि पुरुष को यह विश्वास रहे कि स्त्री की अपनी कोई इच्छा नहीं है, उसे धोखा नहीं हो सकता।

"पुरुष स्त्री को स्वयं प्रेम करने का अधिकार नहीं देना चाहता। उसका अर्थ है हमारा समाज स्त्री-पुरुष के प्रेम में विश्वास नहीं करता। जो समाज स्त्री को स्वतः प्रेम करने का अधिकार नहीं देना चाहता, वह स्त्री को सामन्ती युग की तरह केवल भोग और उपयोग की वस्तु समझता है। वह समाज स्त्री को अपनी इच्छा से, अपने संतोष के लिये शृंगार करने का भी अवसर नहीं देना चाहता।"

कृष्णकुमार ने पूछ लिया—"क्या सामन्ती युग में प्रेम होता ही नहीं था ?"

भुवन ने दृढ़ता से कहा—"हर्गिज नहीं, सामन्ती युग में प्रेम अनैतिक चीज थी, प्रेम को केवल उच्छृङ्खलता और दोष समझा जाता था।"

मुन्नी बोल पड़ी—"यह कैसे हो सकता है जीजा जी ! सम्पूर्ण संस्कृत काव्य, रामायण, महाभारत, पद्मावत और बिहारी-सतसई सामन्त युग का साहित्य है। वह प्रेम और विरह के वर्णन से ही तो भरा हुआ है।"

भुवन गम्भीर हो गया—"वह प्रेम का वर्णन नहीं है। कहीं एक-आध विकल्प हो, वह दूसरी बात है। सामन्ती युग में प्रेम को मान्यता नहीं थी।"

मुन्नी, कुमार और मुंशी जी सभी ने भुवन का विरोध किया—"वाह !

वाह ! यह कैसे मान लिया जा सकता है ?"

भुवन ने पीठ सीधी करके उत्तर दिया--"समझियेगा तो मानियेगा। प्रेम स्वतः उत्पन्न आकर्षण को, भावों के समान आदान-प्रदान को कहना चाहिये। यदि नारी पति को विवाह से पूर्व नहीं जानती तो उसके यहां स्वयं अपनी इच्छा से, प्रेम से नहीं जायेगी। कन्यादान में मिली हुई पत्नी मन के उच्छ्वास से प्रेम आरम्भ नहीं करेगी। वह अनुगता दासी और स्वामीभक्त ही बन सकेगी। सामन्ती नैतिकता में विवाह, प्रेम को चरितार्थ करने के लिये नहीं होता था, परिवार-निर्वाह और वंश-क्रम को जारी रखने के प्रयोजन से किया जाता था।"

भुवन ने मुन्नी की ओर देख कर पूछ लिया--"रघुवंश के आरम्भ में ही रघुकुल की प्रशंसा में क्या लिखा है--संतान के लिये ही गृहस्थ करने वाले... ...प्रजायै गृहमेधिनाम्।" मुन्नी ने मुस्कराकर संस्कृत ज्ञान का परिचय दे दिया।"

भुवन ने मुंशी जी को चेतावनी दी—"गौर कीजिये, उस युग और समाज में विवाह स्त्री-पुरुष में प्रेम के कारण नहीं होता था, केवल घर और वंश को चलाने के लिये होता था। घर और वंश पुरुष का होता था, इसलिये स्त्री की भावना और इच्छा का कोई प्रश्न नहीं हो सकता था। पुरुष घर और वंश चलाने के लिये जितने विवाह चाहता था, कर लेता था।"

मुंशी जी ने कहकहा लगा दिया—"वाह ! वाह ! पहले संतान के लिये ही विवाह किया जाता था, अब विवाह से पहले ही 'फैमिली-प्लानिंग' (परिवार नियोजन) सिखा दिया जाय।"

तप्पी ने मुंशी जी को उत्तर दिया—"कोई मजबूरी नही है, जो चाहे धृतराष्ट्र की तरह सौ कौरव पैदा करके महाभारत की तैयारी कर सकता है।"

भुवन मज़ाक की उपेक्षा करके बोला—"आधुनिक विचार से पति-पत्नी का चुनाव प्रेम के आधार पर ही उचित लगता है परन्तु सामन्ती नैतिकता में पत्नी प्रेम को चरितार्थ करने के लिये नही चुनी जाती थी, परिवार चलाने और वंश की सम्पति के लिये अपना उत्तराधिकारी उत्पन्न करने के प्रयोजन से चुनी जाती थी...।"

विद्या ने टोक दिया—"जी नहीं, पत्नी नहीं चुनी जाती थी, पति चुना जाता था। स्वयम्बर होता था।"

भुवन ने उत्तर दिया—"स्वयम्बर तो केवल काव्यों में होता था, व्यवहार में

कन्यादान होता था। स्वयम्बर कभी होता भी होगा तो पुरुषों की रज़ामन्दी से कि वे एक ही औरत के लिये आपस में न लड़ मरें। घर और वंश के प्रयोजन से पत्नी का पोषण और रक्षा की जाती थी, प्रेम परकीया से किया जाता था क्योंकि परकीया सिर पर लादी हुई नही होती थी। उस के प्रति आकर्षण होता था। आज की नैतिकता से परकीया के प्रेम को केवल वासना और उच्छृङ्खलता कहा जायगा। आज की नैतिकता में उस प्रकार की वासना की निंदा है और प्रेम को मान्यता दी जाती है। सामन्ती नैतिकता में प्रेम घृणित समझा जाता है।"

विद्या, मुन्नी, कृष्णकुमार सभी के चेहरों पर असहमति दिखाई दी।

भुवन ने अपनी बात का प्रमाण देने के लिये हाथ उठा कर कहा—"सुनिये, सामन्ती आत्म-सम्मान के अनुसार आप अपनी बहिन-बेटी को किसी पुरुष के उपयोग के लिये, संतानोत्पत्ति के लिये विवाह में दान तो कर सकते हैं परन्तु आप किसी को अपनी बहिन, बेटी या परिवार की लड़की से प्रेम नहीं करने दे सकते...।"

तप्पी समर्थन में बोल उठा—"बिलकुल, बिलकुल ठीक! प्रेम कीजियेगा किस से; पत्थर से? किसी भी लड़की से प्रेम करते ही पुराने विचार के लोग आप पर उच्छृङ्खलता का कलंक लगा देंगे।"

मुंशी जी विरोध में बोल उठे—"पुराने युग में प्रेम नहीं था तो क्या अब होगा? उस युग में तो स्त्रियां प्रेम में सती हो जाती थीं।"

भुवन झुंझलाकर बोला—"पत्नियां ही प्रेम करती थीं, पति तो नहीं करते थे। पति तो पत्नी के प्रेम में जल कर नहीं मर जाते थे, 'सता' नहीं हो जाते थे इसीलिये 'सती' शब्द का पुल्लिग आप की भाषा में नहीं है। इस शब्द की आप के समाज को कल्पना में भी आवश्यकता न थी। स्त्री या पत्नी प्रेमी के साथ सती नहीं होती थी, स्वामी के साथ सती होती थी। स्वामीभक्ति एक चीज़ है, प्रेम दूसरी चीज़। स्वामी से दासता या भक्ति का अनुशासन निबाहा जा सकता है। प्रेम तो मन की उमंग, समता के भाव से 'डार्लिंग' (सखा) से किया जा सकता है। जो पहले मालिक बन गया, उस के प्रति स्वामीभक्ति ही होगी, प्रेम नहीं। स्त्री कृपा पर जीती थी। कृपा पाने के लिये दीन बनने का, आकर्षक बनने का यत्न करती थी उसी के लिये श्रृंगार और मेक-अप करती थी।"

मुंशी जी ने अस्वीकार किया—"हम तो उलटा देखते हैं, जो जितनी आज़ाद हो गयी हैं, वह उतना ही ज्यादा बनाव-श्रृंगार करती हैं।"

विद्या ने विरोध किया—"स्त्रियों के पहने-ओढ़ने का प्रयोजन क्या केवल पुरुषों को लुभाना ही होता है ? लोग समाज में अपने व्यक्तित्व को उचित रूप में प्रस्तुत करने के लिये भी परिष्कार और प्रसाधन करते हैं। पुरुष समाज में सम्मानित और दूसरों की दृष्टि में अच्छे लगना चाहते हैं। स्त्रियां भी उसी प्रकार परिष्कृत, सुथरी और सम्मान के योग्य लगना चाहती हैं।"

भुवन ने स्वीकार किया—"हां, कुछ स्त्रियां आत्मनिर्भर होने तो लगी हैं परन्तु वे पुरुषों के सन्मुख स्त्रियों के दैन्य के संस्कार से मुक्त नहीं हो पाई हैं। वे अपना आत्म-निर्भर व्यक्तित्व दिखाने की अपेक्षा पुरुषों के लिये कमनीय जान पड़ने में ही अपनी सार्थकता समझे जा रही हैं इसीलिये शृंगार करती हैं।"

विद्या ने पति का विरोध किया—"वाह, बड़े आये पुरुष ! उन्हीं के लिये क्या शृंगार किया जाता है ? अपने संतोष के लिये, आत्म-सम्मान के लिये भी श्रंगार किया जाता है।"

भुवन बोला—"आत्म-सम्मान से जो शृंगार किया जाता है, वह दूसरा होता है। शिष्टता-भव्यता का विचार एक बात है और लुभावनी बनने का प्रयत्न दूसरी बात।"

तप्पी भी बोल पड़ा—"चेहरा पोत लेने में, होंठ और नाखून रंग लेने में क्या आत्म-सम्मान है ? यह तो भव्य न लगने के संदेह की हीन भावना है। जब कोई अध्यापिका, कालेज की लेक्चरार, अच्छे सरकारी पद पर काम करने वाली या मेडिकल कालेज की झांकी बनी हुई, अल्हड़ छोकरियों जैसे कपड़े पहने, खोई-खोई अबूझ लड़कियों जैसे हाव-भाव दिखाती हैं तो बहुत तरस आता है कि इन्हें अपनी शिक्षा, सामाजिक स्थिति और व्यक्तित्व का कोई भरोसा नहीं है। वे सम्मानित और आत्म-निर्भर दिखाई पड़ने की अपेक्षा झपट ली जाने योग्य अबला दिखाई देने में ही अपनी सार्थकता समझती हैं। यह नारी के परम्परागत दैन्य का संस्कार नहीं तो क्या है ?"

तप्पी फिर बोला—"इसमें भी संदेह है कि स्त्रियां लुभावनी बनने के लिये जो प्रयत्न करती हैं, उस का परिणाम उलटा ही तो नहीं होता। यह मालूम हो जाय कि चेहरा पुता है, होंठ और नाखून रंगे हैं और आंखों में भी गोट लगी है तो दया ही आती है कि वे बेचारी अपनी असलियत से कितनी संकुचित हैं।"

सन्तान की मशीन

मुन्नी को आशा थी, रविवार दोपहर बाद चाचा आयेंगे । बड़े मिश्रा जी, भाई की अनुमति के बिना मुन्नी को आई० ए० एस० की परीक्षा की तैयारी के लिये 'हां' नहीं कर सकते थे । मुन्नी के अनुरोध से तप्पी मुन्नी की बड़ी बहिन विद्या और मुन्नी के जीजा भुवन को बुलाने चला गया था । विद्या और भुवन दोनों ही मुन्नी को प्रोत्साहन दे रहे थे ।

विद्या विवाह से पहले मैट्रिक तक ही पढ़ी थी । भुवन विश्वविद्यालय में मानव-विज्ञान का अध्यापक है । इतनी कम शिक्षित पत्नी की संगति से क्या संतोष पाता ? उसने विद्या को प्राइवेट बी० ए० करा दिया है । तीन वर्ष पूर्व यह विशेष अध्ययन के लिये निमंत्रण पाकर अमरीका गया तो विद्या को भी साथ ले गया था । देश-विशेष के अनुभवों के प्रभाव से विद्या अब मर्दों के बीच बैठ कर आमने-सामने बात कर लेती है । पति का समर्थन है, डरे क्यों ?

तप्पी बहिन और जीजा के साथ पहुंचा तो देखा कि मिश्रा साहब का बड़ा लड़का प्रदीप पहले ही आ गया था । तप्पी जरा सनका, मुंशी कालीप्रसाद और उनका सुपुत्र देवीप्रसाद भी प्रदीप से बात करते-करते बैठक में आकर बैठ गये थे । छोटे मिश्रा जी का आना किसी कारण नहीं हो सका था ।

भुवन ने ससुर—बड़े मिश्रा जी के सामने झुक कर चरण छूने का संकेत किया । विद्या और भुवन ने मुंशी जी को भी गली के चाचा के नाते नमस्कार किया ।

बड़े मिश्रा जी ने दामाद को आशीर्वाद देकर, बेटी के सिर पर हाथ रख कर पूछा—"कहो बिट्टो, सब कुशल है न ? सुरेन्द्र बेटे को नहीं लायी ?"

विद्या ने कुशल बताकर, उसी सांस में पूछ लिया—"बप्पा, मुन्नी को आई० ए० एस० क्यों नहीं करने देते ?"

बड़े मिश्रा जी उत्तर सोच ही रहे थे कि मुंशी जी विद्या को आशीर्वाद दे कर बोल पड़े—"बिटिया, तुम तो समझदार हो। अरे बिटिया ने एम० ए० कर लिया है तो उसके लिये माकूल लड़का ढूंढ़ना आसान काम नहीं। आई० ए० एस० कर लेगी तो……।"

मुन्नी, बहिन और जीजा को देख कर बैठक में चली आई थी। मुंन्नी जी ने उसके लिहाज में बात पूरी नहीं की।

भुवन ने मुंशी जी की बात सुनकर मुंह फेर लिया परन्तु विद्या बोली—"वाह चाचा जी, अनपढ़ लड़की का ब्याह अच्छे घराने में होना तो मुश्किल, लड़की अधिक पढ़-लिख जाय तो उसके लिये वर मिलना मुश्किल।"

भुवन ने मुंह बना कर अंग्रेजी में कह दिया—"स्त्री की शाश्वत-हीनता का विचार और विश्वास ?"

मुंशी जी की भवें उठ गयीं—"हैं ?"

देवीप्रसाद ने तुरन्त अंग्रेज़ी में उत्तर दिया—"प्रकृति में नारी का स्थान ही यह है।"

भुवन ने गर्दन टेढ़ी करके पूछ लिया—"प्रकृति में नारी का स्थान नर की सेवा करना है ?"

देवीप्रसाद प्रोफेसर से दबा नहीं। अंग्रेजी में बोला—"प्रकृति में नारी का कर्म और धर्म मातृत्व है।"

भुवन ने विद्रूप में हामी भरी—"हां शायद ! यह बताइये, नर के नियंत्रण में रह कर, नर की आवश्यकता अनुसार मां बनते जाना, प्रकृति में ऐसा कहां होता है ? प्रकृति में मां बनना, नारी की इच्छा पर निर्भर करता है। क्या आप के समाज में नारी स्वतन्त्रता से, अपनी इच्छा से मां बन सकती है ? क्या आप जानवरों की तरह प्राकृतिक अवस्था में रहते हैं ?"

बड़े मिश्रा जी तेज बोलने वाले दामाद से घबराते हैं। उन्होंने गहरे श्वास से 'हरि ओम् ! हरि ओम ! !' भगवान को स्मरण कर शान्ति का संकेत किया।

देवीप्रसाद ने मिश्रा जी के संकेत की ओर ध्यान न देकर अपने डाक्टरी ज्ञान का परिचय दिया—"प्रकृति के भी कुछ नियम हैं। नर और नारी के शरीरों की रचना ही भिन्न है। वे भिन्न कर्मों के योग्य बनाये गये हैं।"

भुवन ने देवीप्रसाद को तीखी नज़र से देख कर पूछा—"क्या नारी के शरीर की रचना पुरुष के संतोष और सेवा के लिये हुई है ? उसके अपने अस्तित्व

और व्यक्तित्व का कुछ महत्व नहीं !"

पति से शह पाकर विद्या भी बोल उठी—"प्राकृतिक नियम नर-नारी का सहयोग है। प्रकृति नारी को नर के उपयोग और सेवा के लिये नहीं बनाती। मातृ-सत्तात्मक समाजों में क्या होता है? दूसरे देशों और समाजों में स्त्रियां क्या नहीं कर रही हैं? रूसी डाक्टरों में अस्सी प्रतिशत संख्या स्त्रियों की है। स्त्रियां इंजीनियर हैं, डायरेक्टर हैं, कैमिस्ट हैं। सीलोन में स्त्री प्रधान मंत्री है। यूनिवर्सिटी का इस वर्ष का रिज़ल्ट भी देख लीजिये! स्त्री की शारीरिक कोमलता के विचार से, शारीरिक बल के कठोर काम स्त्री से अधिक नहीं कराने चाहिये। आपके देश में स्त्रियां ईंटें ढोने के लिये तो मजबूर होती हैं परन्तु समझी जाती हैं पुरुषों से निर्बल!"

विद्या देदीप्रसाद से चार बरस बड़ी है। यूनीवर्सिटी के अध्यापक की पत्नी है पर देवीप्रसाद स्त्री के सामने कैसे निरुत्तर रह जाता? तमक कर बोला—"मान लिया, स्त्रियां पुरुष से बहुत योग्य हो सकती हैं परन्तु समाज की दृष्टि से देखिये, नेचर में स्त्री का पहला फंक्शन मां का है। स्त्रियां अफसरी करेंगी तो मां क्या पुरुष बनेंगे?"

मुंशी जी अपने सुपुत्र के तर्क की सराहना में 'हो हो' करके हंस पड़े—"अरे हां, एक फिल्म देखी थी। क्या नाम था, उसमें रेल की ड्राइवर स्त्री, स्टेशन-मास्टर स्त्री, गार्ड भी स्त्री थी। एक स्त्री अपने मर्द को गाड़ी के मर्दाने डिब्बे में बैठाने आई तो गार्ड से बोली—बहन, जरा ख्याल रखना। मेरा मर्द डिब्बे में अकेला है। क्या नाम, स्त्रियां सुबह उठ कर दफ्तर जाने की तैयारी करेंगी और मर्द उनके लिये खाना पकाया करेंगे, वाह-वाह!"

मुन्नी जल-भुन गई। उस के मुंह से निकल गया—"जो जिस लायक होगा, करेगा!"

मिश्रा जी बहस का ऐसा रुख देख कर अपनी इज्ज़त के विचार से उठ कर भीतर चले गये।

मुंशी जी ने मुन्नी की गुस्ताखी का उत्तर दे दिया—"घर में बच्चों को दूध भी मर्द पिलाया करेंगे?"

विद्या तमक उठी—"आप अपने घर की स्त्रियों के गले में रस्सी डाल कर दूध के लिये बांधे रखिये! हम भी देखेंगे, कितने दिन बांध सकेंगे!"

देवीप्रसाद, पिता और परिवार पर कसे गये छींटे का मार्जन करने के लिये

बोला—"बात तो मातृत्व के प्रसंग की है। समाज में माता के स्थान की है। क्या पुरुष मां का फंक्शन पूरा कर सकता है ?" उसने विद्या और मुन्नी को सुना कर तप्पी की ओर देखा।

भुवन ससुर के बैठक से चले जाने पर सिगरेट सुलगाने लगा था। जलती हुई माचिस को मशाल की तरह दिखा कर उसने पूछ लिया—"मैट्रियार्कल (मातृ-शासित) समाज में मां का कर्म कौन पूरा करता था ?"

"तब ऐसी ही अक्ल के लोग बच्चों को दूध पिलाते होंगे !" विद्या ने यह कह कर मुंह फेर लिया।

तप्पी दीवार का सहारा छोड़ आगे बढ़ कर बोला—"एक ज़माना था, लोग कहा करते थे, स्त्री का काम परिवार की सेवा ही है। परिवार का कल्याण इसी में है कि स्त्री पति और पति के सम्बन्धियों की सेवा करे। अब समाज के कल्याण की चिंता में स्त्री के मातृत्व के कर्म की दुहाई दीजिये ! समाज की चिन्ता मर्दों को ही है, स्त्रियों को नहीं है ? क्या स्त्रियों को अपनी संतान की चिन्ता नहीं होगी ?"

देवीप्रसाद ने व्यंग किया—"अपना बच्चा गोद में लेकर क्या मरीज़ देखने जाया करेंगी ?"

विद्या ने चुनौती में पूछा—"रूस में सौ में अस्सी स्त्रियां डाक्टर हैं, वह क्या करती हैं ?"

"ओ हो !" मुंशी जी हाथ फैला कर बोले, "बच्चे जन कर नर्सरी में डाल देती होंगी और वह मशीनों से पलते होंगे।"

"जी हां," मुन्नी ने तप्पी की ओर झुक कर दबे स्वर में कह दिया, "मशीन में पले हुये बच्चे ही अंतरिक्ष विजय कर रहे हैं।"

त्रिवेदी जी गली से बाहर जा रहे थे। बहस में स्त्रियों को बढ़-चढ़ बोलते सुना तो भीतर आ गये। त्रिवेदी जी मशीन की चर्चा सुन कर भड़क उठते हैं। उन्होंने मुन्नी की बात सुन ली थी। त्रिवेदी जी मोटे चश्मे में से आंखें झपककर बोल पड़े—"क्या हो रहा है ? जब देखो मशीन, मशीन ! मशीनों ने तो हमारे जीवन को रूखा, निर्दय और कटु बना दिया है। गांधी जी इसलिये तो कहते थे, मशीन को छोड़ो, चर्खे का अवलम्बन लो।"

"चाचा जी, शरीर भी तो मशीन है।" मुन्नी ने आंचल होंठों पर रख कर धीरे से कह दिया।

"ऐं" त्रिवेदी जी ने मुन्नी की ओर कान जरा झुकाया और फिर अपनी बात कहते गये, "मशीन से आप अंतरिक्ष विजय कर सकते हैं, परन्तु हृदय और आत्मा विजय नहीं कर सकते। जीवन को मशीनों में डाल देंगे तो माता का वात्सल्य नहीं रहेगा, नारी का स्नेह से आत्म-समर्पण नहीं रहेगा। नारी लक्ष्मी नहीं रहेगी, मोटर बन जायेगी और पुरुष डायनेमो बन जायगा। सब कुछ हार्स पावर बन जायेगा। जीवन में माधुर्य रहेगा ही नहीं। आप लोहे के पशु 'रोबोत' बन जायंगे। मनुष्य बनना है तो पुराने आदर्शों और नीति को ही अपनाना होगा।"

"कौन से आदर्शों को, किस नीति को ?" तप्पी ने त्रिवेदी जी को टोकने के लिये ज़रा जोर से पूछ लिया।

"ऐं" त्रिवेदी जी ने विघ्न अनुभव कर सांस लिया और उत्तर दे दिया, "अपने भारतीय आध्यात्मिक आदर्शों को ! दूसरे कौन से आदर्श हैं !"

"क्या आध्यात्म कहता है कि स्त्री सदा माता बनती रहे, पुरुष की सेवा करती रहे और समाज का स्वतन्त्र व्यक्ति न बने ?" भुवन ने पूछ लिया।

"यही तो स्वाभाविक है," मुंशी जी ने त्रिवेदी जी को प्रोत्साहन दिया। "धन कमाने और बढ़ाने के लिये ही तो मशीनें बनायी जाती हैं, धन के लोभ में ही स्त्रियों से भी नौकरी करवाना चाहते हैं। स्त्री को घर की लक्ष्मी नहीं रहने देना चाहते बल्कि कमाई की मशीन बना देना चाहते हैं।"

"बहुत अच्छा आदर्श है !" विद्या ने भवें उठा कर विरोध किया, "लक्ष्मी का तो अर्थ ही सम्पत्ति है। कन्या बाप की सम्पत्ति हुई, कन्यादान कर दिया तो गरीब स्त्री ससुराल की लक्ष्मी (सम्पत्ति) हो गई।"

भुवन ने और कलम लगाई—"हां, और लक्ष्मी चंचला होती है इसलिये उसे गले में रस्सी और आंखों पर पट्टी बांध कर रखना चाहिये !"

प्रदीप ने अवसर देख टोक दिया—"मिस्टर, यह अमरीका-योरुप का असर बोल रहा है ! भारतीय नारी चंचला नहीं होती वह बांध कर नहीं रखी जाती। उसका आदर्श सतीत्व रहा है। किस और देश में नारी सती हुई है, कहिये !"

भुवन हंस दिया—"स्त्री का सती हो जाना या पति के साथ मार दिया जाना क्या बहुत बड़ा आदर्श था ? तुमने मानव-शास्त्र पढ़ा होता तो बताना नहीं पड़ता कि ऐसे बर्बर आदर्श भारतीयों की अपेक्षा पुराने मिश्र, अफ्रीका और फीजी द्वीपों में कहीं अधिक थे।"

मुन्नी बोल पड़ी—"मानव-शास्त्र क्या, शरत बाबू ने अपनी पुस्तक 'नारी का मूल्य' में लिखा है कि अफ्रीका की डाहोमी जाति और फीजी के आदिम-वासियों में पति के साथ पचास, सौ-सौ स्त्रियां बहुत आग्रह से सती हो जाती थीं या अत्महत्या कर लेती थीं। ब्राह्मणों, ठाकुरों या बनियों के सिवा किस भारतीय बिरादरी में स्त्रियों को सती किया जाता था ? भारत केवल ब्राह्मणों, ठाकुरों और बनियों का नहीं है। भारत की अस्सी प्रतिशत जनता—जिन्हें आप शैडयूल कास्ट या परिगणित जातियां कहते हैं, उनमें सदा से विधवा विवाह होते चले आये हैं। सम्भ्रांत कुल की विधवा विवाह कर लेती तो दूसरे वंश की सम्पत्ति बन जाती।"

मुन्नी कहती गई—"पुरुष की मृत्यु के बाद स्त्री दूसरे पुरुष से संतान न पैदा कर ले और वे वंश की जायदाद न बटाने लगें, सती प्रथा का यही आर्थिक कारण था। यह चिन्ता केवल भारत की समृद्ध बिरादरियों में ही थी। प्रश्न वंश की सम्पत्ति, गौरव और उत्तराधिकार का था।

तप्पी ने चुनौती दी—"यदि आप सती प्रथा को गौरव की वस्तु समझते हैं तो उसके पुनरुद्धार के लिये आन्दोलन क्यों नहीं चलाते ? यदि आज सती प्रथा कानूनन जारी कर दी जाये तो आप ही चीख उठेंगे।"

मुन्नी ने याद दिलाया—"शरत बाबू ने लिखा है—जिस समय लार्ड बेंटिक ने सती प्रथा का निषेध कर दिया था, तब भारत के धर्मरक्षक पंडितों ने अपने धर्म में सरकार के इस हस्तक्षेप के विरुद्ध इंगलैंड की प्रिवी-कौंसिल में अपील की थी।"

तप्पी बोल पड़ा—"ठीक है, भारतीय आदर्शों की रक्षा के लिये गोवध बंद हो गया है, अब सती प्रथा आरम्भ करवा दीजिये ! बूढ़ी गौओं के वध-निषेध का परिणाम तो आपने देख लिया। घी-दूध मिलना दुर्लभ हो गया। सती प्रथा कानूनन लागू कर देने का परिणाम होगा कि स्त्रियां बीमारी में पति की बिगड़ती हालत देख प्राण-रक्षा के लिये भाग जाया करेंगी।"

मुन्नी ने दीवार की ओर देख कह दिया—"क्यों नही भागेंगी ? ज़िन्दा जलने के लिये कौन तैयार होगी !"

भुवन ने कहा—"यदि सती प्रथा के लिये आन्दोलन करने का साहस नहीं है तो परिस्थितियों के अनुसार स्त्री को स्वतन्त्रता और समता दीजिये !"

"क्या कहते हैं, क्या कहते हैं आप !" त्रिवेदी जी ने ज़ोर से आपत्ति की,

"इतने उत्सर्ग के आदर्शों का मज़ाक बना रहे हैं ?"

तप्पी अपनी जगह से आगे बढ़ गया—"आदर्श क्या था ? जिन्हें आप प्रात: स्मरणीय पंच-कन्या कहते हैं, क्या नाम थे उन के ?" उस ने मुन्नी की ओर देखा ।

"मंदोदरी, अहिल्या, कुन्ती, तारा, द्रोपदी ।" मुन्नी ने जल्दी से बता दिया ।

"बताइये, इन में से किस के आदर्श पर अपने परिवार की कन्याओं को अनुकरण का आदेश देंगे !"

विद्या और मुन्नी शर्मा गईं । भुवन बहुत जोर से ठहाका लगा कर हंस पड़ा ।

प्रदीप ने आपत्ति की—"आप अपने पूर्वजों का उपहास करते हैं, यह नहीं सोचते कि उस समय परिस्थितियां दूसरी थीं ।

"हम तो परिस्थितियों की बात सोचते हैं, आप ही नहीं सोचते ! नयी परिस्थितियों में पुरानी प्रथाओं को आदर्श कैसे माना जा सकता है ?"

त्रिवेदी जी नाराज़ हो गये थे, बोले—"तो बन जाइये मशीन, स्त्रियों को भी मशीन बना दीजिये । बच्चों को भी मशीन से पालिये । उन के मुख में ट्यूब लगा कर दूध भर दिया कीजिये ।"

तप्पी ने कहा—"आप को बच्चे पालने के लिये मशीन जरूर चाहिये इसलिये आप स्त्रियों को बच्चे पालने की मशीन बनाये रखना चाहते हैं । इन के आदर्श तो पड़ोसी कन्हैयालाल हैं ।"

विद्या बोल पड़ी—"सोलह बरस में ग्यारह बच्चे । सवा सौ रुपल्ली महीना पाते हैं, उस में मकान का किराया, हर सवा-डेढ़ साल में डिलीवरी का खर्चा, मैट्रिक में फेल हो जाने वाले सुपुत्रों को पास कराने के लिये ट्यूशनें और खर्च ! बच्चे तो जल और वायु से ही पल जाते होंगे ?"

भुवन गम्भीर हो गया—"जब स्त्री का काम केवल बच्चे पैदा करना और उन्हें पालना ही समझा जाये तो उसे इसी प्रकार जनसंख्या बढ़ानी चाहिये । एक ओर आप का यह आदर्श है, दूसरी ओर सरकार बेकारी और भूख रोकने के लिये परिवार-नियोजन—संतति-निरोध की शिक्षा दे रही है । यदि शिक्षित स्त्री जीवन में एक या दो से अधिक संतान नहीं चाहती तो अपना जीवन चौके-चूल्हे, भांड़े-बर्तन में कैसे खपा दे ! क्या वह देश को समृद्ध बनाने में योग न दे ?"

"देश को तो समृद्ध बनायें परन्तु बच्चों की उपेक्षा करें ! बच्चे के लिये मां से बड़ा शिक्षक कौन हो सकता है ? बच्चा मां का वात्सल्य और कोमल भावनायें कहां पा सकता है ? जो बात मां के थप्पड़ और मां के दुलार में हो सकती है, वह उसे और कहां मिलेगी ?" त्रिवेदी जी ने पूछा ।

"ऐसी बात है तो बच्चे के रोग-कष्ट के इलाज के लिये भी डाक्टर को न बुला कर, बच्चे का इलाज मां के वात्सल्य से ही कर लेना चाहिये । बच्चे की शिक्षा के लिये स्कूल न भेज कर सब कुछ गोद में ही सिखाना चाहिये, तभी भारत की सन्तानें प्रकाण्ड वैज्ञानिक और वीर योद्धा बनेंगी ।" भुवन ने कहा ।

देवीप्रसाद ने विरोध किया—"चिकित्सा और वैज्ञानिक शिक्षा की बात दूसरी है । वह स्पेशलाइज्ड (विशेष ज्ञान की) ट्रेनिंग होती है ।"

"डाक्टर साहब !" तप्पी ने विद्रूप से सम्बोधन किया, "एक ज़माने में बच्चे-बूढ़ों के सब इलाज दाइयों के टोने टोटके से हो जाते थे । अब आप कालेज में इलाज करना सीख रहे हैं । बच्चों का शैशव से ही उचित मार्ग पर विकास करने, उन की प्रकृतिदत्त सम्भावनाओं को विकसित करने के लिये भी स्पेशलाइज्ड मनोवैज्ञानिक ट्रेनिंग की आवश्यकता होती है ।"

मुंशी जी बिगड़ उठे—"तो तोड़ दो परिवार को ! ब्याह की जरूरत क्या है ? सब को समाजवादी बना दो !"

तप्पी चुप नहीं हुआ—"ब्याह तो समाजवादी भी करते हैं । जबरदस्ती समाजवादी किसी को नहीं बना दिया जा सकता । अक्ल का ठेका भी समाजवादियों ने नहीं ले लिया है । बच्चों को अच्छी शिक्षा मिलेगी तो परिवार टूट नहीं जायेंगे ! परिवार का रूप और क्षेत्र भी सदा एक से नहीं रहे । परिवार तो परिस्थितियों के अनुसार बनते रहे हैं और बनेंगे !"

वर-कन्या का मोल

मुंशी कालीप्रसाद बैठक की खिड़की के समीप बैठे हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। चश्मा चढ़ाये, गली के सामने सड़क पर नज़र लगाये थे। सिन्हा बाबू की बड़ी लड़की स्कूल से इसी समय लौटती है। इक्कीस-बाइस की जवान औरत अपने आप को कुमारी बताने के लिये दो चुटिया करती है। नौकरी कर ली है तो निडर हो गयी है। आंचल कंधे से पीठ पर लटका रहता हैं। मुंशी जी ऐसी लड़कियों को कुमारी नहीं, ज़रा मुस्कराकर—'अनब्याही' ही कहते हैं। मुंशी जी को संदेह है कि कोई जवान उसे गली तक छोड़ने आता है। मुंशी जी जवान को पहचान लेना चाहते थे। वे रहस्य-कौतूहल में यह भी भूल गये थे कि उस दिन रविवार था, सिन्हा बाबू की बड़ी लड़की कांता घर से कहीं गयी ही नहीं थी परन्तु मुंशी जी की कौतूहल में प्रतीक्षा की तपस्या व्यर्थ नहीं गयी।

गली के सामने दो रिक्शा रुके। एक रिक्शा में से उतरा भुवन और उनका बहनोई रामभरोसे, दूसरी में से उतरी विद्या और भुवन की बहिन। मुंशी जी समझ गये ससुर को प्रणाम करने आये होंगे।

मुंशी जी ने अनुमान कर लिया—समधियाने से मेहमान आये हैं तो जरूर बंगाली के यहां से रसमलाई और समोसे आयेंगे। अपनी बैठक में थे इसलिये कंधों पर बनियान और कमर पर बड़ा अंगोछा ही लपेटे थे। झपाटे से चश्मा उतारा, कमीज-धोती पहन ली और मिश्रा जी के यहां, गली के नाते बेटी और दामाद को आशीर्वाद दे आने के लिये चल दिये।

मुंशी जी ने मिश्र जी की बैठक में अच्छा-खासा जमघट पाया। मुन्नी के चाचा, छोटे मिश्रा साहब भी हैदराबाद से आये हुये थे। वे अपनी साली की बेटी के विवाह से लौटे थे और क्रुद्ध स्वर में वर पक्ष के अन्याय की बात बता रहे थे:—वर पक्ष ने दहेज में आठ हजार नकद लेना तय किया था। चार हजार

तिलक में भेज दिया गया था और चार द्वारचार के समय पूज दिया गया। वर के पिता आठ हज़ार गांठ में बांध कर चार हज़ार और मांग बैठे। बेईमान सगाई के समय लड़की की जन्मपत्री देख चुके थे। सब तसल्ली करके सम्बन्ध माना था। अब कहते हैं—हमें मालूम हो गया है, लड़की अट्ठारह की नहीं, बीस की है। हम से धोखा किया गया है। दूसरी जगह हमें बारह हज़ार मिल रहा था। चार हज़ार और नहीं मिलेगा तो बारात लड़की को बिदा कराये बिना लौट जायगी। लड़की के पिता ने अपना कस्बे का मकान रेहन रखकर और जहां से भी उधार मिल सका, लेकर देने के लिये आठ हज़ार जोड़ा था। चार हज़ार अब और कहां से ले आते। बारात सचमुच लड़की को छोड़ कर चली तो बाप को गश आ गया। सब ने वर के पिता को बहुत धिक्कारा पर उन्होंने परवाह नहीं की। बोले—हमें भी अपनी लड़की ब्याहनी है।

पड़ोसी सिन्हा बाबू भी बैठक में आ गये थे। वे तीन जवान कुंवारी लड़कियों के पिता हैं। क्रोध में बोले—"ऐसे कमीने लोगों पर क्रिमिनल ब्रीच आफ ट्रस्ट (धोखे के जुर्म) के लिये दावा दायर किया जाना चाहिये।"

मुंशी जी को अभी छोटे लड़के का ब्याह करना है। उन्होंने सिन्हा की नादानी के लिये सहानुभूति प्रकट की—"जितना तय किया था उससे अधिक मांगना तो नामुनासिब है लेकिन दावा किस सबूत पर किया जा सकता है ? ऐसे मामलों में कहीं लिखत-पढ़ते या रसीद होती है ? समधियाने से लड़ाई लेना कोई मज़ाक है ? आखिर बेटी को तो उसी घर भेजेंगे !"

मिश्र जी ने गहरा सांस लेकर दुःख प्रकट किया—"यह समधियों का कर्म हुआ ? समधी का तो अर्थ ही सम्बन्धी है। यह क्या सम्बन्ध हुआ ? लड़की ऐसी ससुराल को क्या समझेगी ?"

विद्या बोल पड़ी—"समझ लेगी, मां-बाप उसे और नहीं झेल सके। उन्होंने कसाइयों को फीस दे दी है कि अब इसे तुम सम्भालो। कितनी लड़कियों की जिन्दगियां बरबाद होती हैं दहेज के झगड़ों में। मां-बाप को दुरावस्था से बचाने के लिये कई आत्महत्या कर चुकी हैं।"

विद्या की ननद को अपनी उन्नीस बरस की कुंआरी 'नन्हीं' का ध्यान आ गया। भाई के ससुर और दूसरे मर्दों के आदर में सिर का आंचल ज़रा और आगे सरका कर बोलीं—"हां, भले इज्ज़तदार लोगों के लिये बेटी का ब्याह मामूली बात नहीं है, पर अपनी और बेटी की इज्ज़त लड़की को ससुराल पहुंचा

देने में ही है।"

छोटे मिश्रा जी ने गहरा सांस लेकर समर्थन किया—"सो तो है ही परन्तु दहेज कहां से आये ! हमारे लखनऊ में इस समय दो-ढाई सौ बी० ए०, एम० ए० पास चौबीस-पच्चीस बरस की जवान कुआंरी लड़कियां, नौकरियां करके दिन गुजार रही हैं। कारण यह है कि उनके परिवार दहेज नहीं जुटा पा रहे।"

सिन्हा बाबू को बात अपने ऊपर लगी, बोल पड़े—"वाह साहब, बी० ए० एम० ए० पास लड़कियों की इज्ज़त, क्या नाम अनकल्चर्ड लोगों के घर जाकर झाड़ू, चौके, बर्तन में खप जाने में है ? उन्होंने शिक्षा पाई है तो उन्हें सोसाइटी के लिये रिस्पेक्टेबल सर्विस करनी चाहिये।"

मुंशी जी एक बेटी के लिये दहेज दे चुके हैं, एक बेटे के लिये ले चुके हैं। इतने में तो पूरम्पूर ही हुआ है। अब वे छोटे बेटे के लिये लेने की प्रतीक्षा में हैं। मुंशी जी ने असहमति में सिर हिला दिया—"अजी, कहीं लड़कियों की ज़िन्दगी ऐसे कटती है। जीवन गृहस्थ के बिना पूरा नहीं होता।"

तप्पी मुंशी जी की बात जरूर काटता है—"गृहस्थ तो लड़के-लड़की दोनों को चाहिये। हर्जाना सब लड़की का परिवार ही क्यों भरे ?"

मुंशी जी ने पड़ोस के नाते फूफा होने के अधिकार से तप्पी को डांट दिया—"इस में हर्जाने का क्या सवाल है ? तुम्हें एम० डी० तक पढ़ाने में भाई साहब का कितना खर्च हुआ ? तुम्हारी बहू आयेगी तो तुम्हारी पढ़ाई का फायदा उसे नहीं होगा ? भाई साहब को मुन्नी का ब्याह नहीं करना है ?"

विद्या को अपनी छोटी बहन के बारे में पड़ोसियों की चिन्ता पसन्द नहीं। वह मुंह खोले कि तप्पी तड़ाक से बोल पड़ा—"मुन्नी ऐसी अपाहिज नहीं है कि उसके जीवन-निर्वाह के इंश्योरेन्स के लिये दस-पन्द्रह हजार भरने की ज़रूरत हो !"

मुन्नी को अपने विषय में चर्चा पसन्द नहीं। वह उठ कर आंगन में चली गयी परन्तु सिन्हा बाबू की भी तो मुन्नी जैसी कुआरी बेटियां हैं, बोले—"हां, जो पढ़ी-लिखी लड़कियां डेढ़-दो सौ महीने कमा रही हैं, ससुराल वालों पर उन के निर्वाह का क्या बोझ ? यों तो स्वयं ससुराल को सहायता दे सकेंगी और जनाब, अब तो दहेज मांगना गैरकानूनी है। सर्वोदय वाले भी दहेज विरोधी कान्फ्रेन्स कर रहे हैं।

छोटे मिश्रा जी बोले—"सर्वोदयी दहेज की निन्दा में प्रस्ताव पास कर

देंगे । उन के पास कौन शिकायत ले जायगा कि हमें दहेज देना पड़ रहा है ? दहेज से रक्षा के लिये जैसा कानून बना है, उस से कुछ नहीं होने का ।"

मुंशी जी ने उंगली उठा कर चेतावनी दी—"जनाब, कानून द्वारा दहेज मांगना या उस के लिये दबाव डालना मना है, बेटी को गिफ्ट (उपहार) देना या स्वीकार करना तो गैरकानूनी नहीं है ।

भुवन ने होंठ बिचकाकर कह दिया—"गिफ्ट में बीस हजार का चेक भी मांगा जा सकता है ।"

मिश्र जी दामाद की हंसी का अर्थ समझ कर बोले—"अपने संतोष के लिये बेटी को देना एक बात है ।"

रामभरोसे बोले—"अरे साहब, बेटियों वाले ही जानते हैं । संतोष के लिये क्या लड़के वाले नींबू की तरह निचोड़ते हैं । कुछ तो ऐसे बेहया हैं कि साफ पूछ लेंगे—क्या खर्च कीजियेगा ? कुछ मुलायमियत से कहेंगे जैसे पके आम को पिलपिला रहे हों—हां हां, लड़का आपका ही है, जल्दी क्या है । उसकी पढ़ाई पर बहुत खर्चा हो गया है । विलायत जाने को भी कह रहा है । दो-चार और परिवारों से भी संदेश आये हैं । ज़रा सोच लें, आप फिर पूछ लीजियेगा ··!"

छोटे मिश्रा जी ने बात पूरी की—"मतलब यही कि आप गांठ ढीली करें, बड़ी से बड़ी आफर दें नही तो चांस गया !"

मुंशी जी फिर बोल उठे—"अरे भाई, जब देना पड़ता है तो लेना भी पड़ता है । यह तो संसार है, इसी तरह चलता है ।"

विद्या ने कहा—"लेना-देना एक बात है पर इस बात का क्या विश्वास कि अधिक दहेज लाने वाली लड़की अच्छी ही होगी ?"

भुवन ने टोक दिया—"ज़रूर, अधिक दहेज वाली ही अच्छी होगी । सुनिये, लड़के के सामने चार लड़कियों का प्रस्ताव है । वह किसी लड़की को पहचानता नहीं । लड़कियां तो चारों हैं, वह किस को चुने ? जो अधिक दहेज लाये, वह अधिक अच्छी । लड़के-लड़कियां परिचय और आकर्षण से स्वयं विवाह करते नहीं, विवाह परिवार करते हैं । उनकी पसन्द तो केवल दूसरे परिवार की स्थिति और अपने आर्थिक लाभ पर निर्भर करेगी । ऐसी भी बिरादरियां हैं जो लड़की का दाम ले लेती हैं । उनके लिये जो लड़के वाला अधिक दाम दे, वही अच्छा । जब तक ब्याह दामों के आधार पर होंगे, दाम लिया-दिया जायेगा ।"

तप्पी बोला—"अपनी लड़की देते समय दाम लेना एक हद तक क्षम्य हो सकता है। दूसरे का परिवार चलाने के लिये अपनी पाली-पोसी लड़की दी जाय तो उसका दाम लेना मुनासिब है।"

मिश्र जी ने ग्लानि से सिर हिला दिया—"राम-राम।"

मुंशी जी जोर से बोल पड़े—"बेटी को बेचने से अधिक घृणित काम और क्या होगा ! यह तो बुर्दाफरोशी हुई।"

तप्पी ने पूछ लिया—"क्या बेटे के दाम लेना बहुत सम्मानजनक है ? यह बर्दाफरोशी नहीं ?"

भुवन ने तप्पी के समर्थन में प्रमाण दिया—"अपनी बेटी के लिये मूल्य लेना बुर्दाफरोशी है तो वह शास्त्रों के अनुकूल है। शास्त्रों में आठ प्रकार के विवाह बताये गये हैं—ब्रह्म, देव, आर्ष, प्रजापत्य, असुर, गन्धर्व, राक्षस और पैशाच। आसुर विवाह प्रणाली में कन्या का मूल्य लेने का विधान है। वर का मूल्य या दहेज लेने का विधान किसी शास्त्र और स्मृति में नहीं है, इसलिये दहेज ही अधिक घृणित समझा जाना चाहिये।"

सिन्हा बाबू ने उत्साह से भुवन का समर्थन किया—"यही तो बात है, यही तो बात है परन्तु अब शास्त्र और न्याय की बात मानता कौन है ? दहेज के रूप में लड़के का दाम लेना जरूर बुर्दाफरोशी है। सर्वोदय वाले भी तो यही कह रहे हैं कि इस बुरी प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन किया जाना चाहिये। सम्मानित लोगों से, मिनिस्ट्रों और बड़े आदमियों से हस्ताक्षर लेने चाहिये कि वे दहेज नहीं लेंगे।"

छोटे मिश्रा जी हंस पड़े—"सम्मानित लोग तुरन्त हस्ताक्षर कर देंगे। उन्हें मांगने की जरूरत क्या है ? वे जानते हैं, उनके परिवार में लड़की देने का साहस वही करेगा जो खूब बड़ी गिफ्ट दे सकेगा।"

सिन्हा बाबू ने कहा—"नहीं साहब, सर्वोदयी नौजवानों से भी हस्ताक्षर कराने के लिये कहते हैं कि दहेज का लालच नहीं करेंगे, सेक्रिफाइस करेंगे।"

भुवन चौंक उठा—"ब्याह और सेक्रिफाइस ! ब्याह भोग के लिये किया जाता है या त्याग के लिये ? ऐसी बात सर्वोदयी ही कह सकते हैं कि दया करके गरीब लड़कियों से ब्याह कर लीजिये।"

भुवन ने तप्पी को पुकारा—"त्याग का यह पुण्य तुम कमा डालो ! यह दया करके ब्याह करेगा तो सबसे गरीब की लड़की से ब्याह करना होगा, जिसका

ब्याह कठिन हो। सबसे गरीब की लड़की शायद अनपढ़ ही होगी। अनपढ़ का भी शायद कहीं ब्याह हो जाये। दया से त्याग करना है तो इसे अंधी या तपेदिक से मरती कुंवारी लड़की से ब्याह करना चाहिये।"

विद्या ने कहा—"हाय, क्या कह रहे हो!"

तप्पी बोल पड़ा—"जी हां, दया और त्याग करना है तो एक ही पर क्यों; बाकी क्यों अनाथ रहें? ऐसी दस-पांच को न समेट लूं! रुपया गांधी निधि से दिलवा दीजिये!"

मुंशी जी ने समाधान करना चाहा—"भई, जिस समाज की जो परम्परा होती है, उसमें वही चलता है। न इसे दहेज कानून बन्द कर सकता है, न सर्वोदयी बन्द कर सकेंगे।"

भुवन ने कह दिया—"दहेज बन्द तो हो ही जायेगा और इसे स्वयं लड़कियां ही बन्द कर सकेंगी। लड़कियों में हिम्मत और अक्ल आने की देर है। परिस्थितियां वह समय ला रही हैं।"

सिन्हा बाबू ने निराशा से पूछ लिया—"हिम्मत और अक्ल अब क्या कम है? बेचारी लड़कियां क्या कर लेंगी?"

भुवन ने उत्तर दिया—"लड़कियां सब कुछ कर लेंगी। अभी लड़कियां पढ़-लिख कर भी अपना सम्मान भोली, मूक और अबोध मानी जाने में ही समझती हैं। लड़की अपने योग्य लड़के को काबू कर ले, लड़का भी उसी लड़की से विवाह करना चाहे तो लड़के का परिवार झख मार कर बिना दहेज मांगे विवाह करेगा। लड़की वाला दाम मांग ही न सकेगा।"

मुंशी जी ने आतंक प्रकट किया—"क्या मतलब, लडकियां लड़कों पर फंदे डाला करें?"

तप्पी ने उत्तर दिया—"फंदों का मतलब होता है, अनुचित लाभ के लिये धोखा देना। एक दूसरे के योग्य लड़के-लड़कियों में परस्पर प्रेम हो जाने पर जीवन का साथ निबाहने की इच्छा को फंदा डालना नहीं कहा जायेगा।"

मुंशी जी ने फिर कहा—"क्या इज्जतदार घरों की जवान लड़कियां लड़कों से प्रेम करती फिरें…?"

मिश्र जी ने दोनों हाथ मल कर चिंता प्रकट की—"भगवान न करे, भले घर की लड़कियां ऐसे लच्छन सीखें।"

भवन ने ससुर को उत्तर देने के लिये मुंशी जी से पूछा—"भले घर की

जवान लड़की अपने योग्य किसी लड़की से प्रेम करे तो इस में खानदान की क्या बेइज़्ज़ती है ?"

मुंशी जी हंस दिये—"यह बेइज़्ज़ती नहीं तो और क्या है ? कौन इज़्ज़तदार आदमी अपनी बेटी के लिये ऐसा कलंक सह सकता है।"

विद्या ने मुंह फिरा कर स्वगत कह दिया—"इज़्ज़त परिवार की होती है, लड़की की कुछ इज़्ज़त नहीं !"

भुवन ने पत्नी का भाव समझ कर मुंशी जी को घूर कर पूछा—"अपनी बेटी की इच्छा का विचार किये बिना किसी अपरिचित को उसका पति बना देने का क्या अर्थ है ! बेटी की इच्छा-अनिच्छा का कोई महत्व नहीं, उसे पति बना दिये गये व्यक्ति की कामेच्छा पूर्ण कर सन्तानोत्पति करनी होगी। यह बेटी की इज़्ज़त है परन्तु बेटी किसी लड़के को पहचान कर, उसे अच्छा और अपने योग्य समझ कर जीवन का साथी बनाने के प्रयोजन से विवाह की इच्छा प्रकट करे तो इसमें हम अपनी बेइज़्ज़ती समझते हैं।"

तप्पी बोला—"अपने आपको सम्भ्रान्त समझने वाले लोग आत्म-प्रवंचना से संतोष पाते हैं। वे बहुत यत्न से मिथ्या-विश्वास बनाये रखते हैं कि हमारी बेटियां पढ़-लिख कर, जवान होकर और सब प्रकार से समझदार होकर भी प्रेम और जीवन की इच्छा को अनुभव नहीं करतीं। उनकी अपनी कोई पसन्द नहीं है। वे किसी को अच्छा-बुरा नहीं समझ सकतीं। वे इतनी संज्ञा और भावना शून्य हैं कि उनमें जीवन की इच्छा के रूप में प्रेम की भावना उत्पन्न हो ही नहीं सकती। हम अपना सम्मान, अपने लिये कुछ न कर सकने योग्य बेटियों के लिये दहेज से मर्द खरीद देने में समझते हैं।"

सिन्हा साहब अपनी तीनों कुंवारी जवान बेटियों पर बात न आने देने के लिये बोले—"अरे भाई, कहने को चाहे जो कह लो परन्तु अच्छे खानदान की लड़कियां ऐसी बात सोचती ही नहीं।"

विद्या ने नज़र फ़र्श की ओर झुका कर सिन्हा साहब की विवशता में सहानुभूति प्रकट की—"जो ब्याह की बात नहीं सोचतीं, जिनकी प्रवृत्ति गृहस्थ की ओर नहीं है, उन पर पति क्यों लादे जायें ?"

भुवन बोल पड़ा—"लड़की अच्छी और पर्याप्त शिक्षा पाकर भी चौबीस-पचीस की आयु तक किसी को पसन्द नहीं आ सकी या जो किसी नौजवान को प्रभावित नहीं कर सकी, उसे ब्याह की इच्छा करने का अधिकार क्या है ?

जो ऐसी कूड़ा लड़की का बोझ उठाना स्वीकार करेगा, दहेज में भारी रकम मांगेगा ही !"

तप्पी बोल पड़ा—"ऐसी कूड़ा लड़कियों से केवल त्याग की भावना से या दहेज की कामना से ही विवाह किया जा सकता है। जीवन के सुख की कल्पना से नहीं।"

विद्या ने कह दिया—"दहेज की कुप्रथा गरीब माता-पिता पर दया करने के उपदेशों से समाप्त नहीं हो सकती। यदि पढ़ी-लिखी जवान, समझदार लड़कियां, अपने परिवार से दहेज के मोल में पति खरीद लेने की आशा करें तो उनकी शिक्षा व्यर्थ ही समझी जानी चाहिये।

"अवांछित कुमारियों के उद्धार का यह पुण्य कर्म, गांधीवाद के अनुसार पत्नी को बहन बना कर रखने के लिये केवल सर्वोदयी त्यागी ही कर सकेंगे। क्या लड़कियों के लिये यह सम्मानजनक है ?"

पाप या वरदान

मिश्र जी की गली में आठ-दस मकान छोड़ कर विनायक सुकुल रहते हैं। विनायक सुकुल रेलवे वर्कशाप में क्लर्क हैं। मिश्र जी और विनायक सुकुल के परिवारों में रिश्ते का सम्बन्ध है जरूर, पर वह सम्बन्ध लगभग अनुसंधान का ही विषय हो गया है। अब सम्बन्ध वास्तव में जात-बिरादरी का ही है। मिश्र जी और सुकुल दोनों को याद है कि सुकुल जी के पिता, मिश्र जी की मां के मामा के लड़के के साले थे। इसी सम्बन्ध के नाते मिश्र जी ने सुकुल के पिता रघुनाथ सुकुल को गली में मकान दिलवा दिया था।

रघुनाथ सुकुल फलित-ज्योतिष से जीविका चलाते थे। उन के पुत्रों ने मैट्रिक तक अंग्रेजी शिक्षा पाई है, इसलिये सरकारी नौकरी की सम्मानजनक जीविका अपना ली है। विनायक सुकुल के तीन छोटे भाई जीविका की खोज में दूसरे नगरों में चले गये हैं। सुकुल पिता के समय से ही चले आये किराये के मकान में जमे हैं। मकान ऐसा बुरा नहीं। दो कोठरियां और छोटा-मोटा आंगन भी है। किराया सस्ता है—युद्ध के समय से पहले का, तीस प्रतिशत बढ़ जाने पर भी साढ़े पांच रुपये ही है। सुकुल आयु के विचार से भरी जवानी में हैं—'वैरी की आंख में नोन फिटकरी'—चालीस के इस पार। अभी देश की मानव शक्ति (मैन पावर) बढ़ाने में काफी सहायक हो रहे हैं।

सुकुल की मां पोते के जन्म की पूजा का प्रसाद और गाने का निमंत्रण मिश्र जी के यहां देने आई थी तो विद्या के लिये भी प्रसाद दे गई थी। मुन्नी से अनुरोध कर गयी थी—"बिटिया, तू ही बिद्दो के यहां भिजवा देना। मैं डुकरी उतनी दूर कहां जाऊंगी!"

विद्या और भुवन न्यू हैदराबाद से शापिंग के लिये हजरतगंज जाते हैं तो मिश्र जी, मां और मुन्नी से मिल लेने के लिये घर भी आ जाते हैं।

भुवन और विद्या के बैठक में आने पर मिश्र जी, बेटी और दामाद से कुशल-मंगल पूछ रहे थे। विद्या की मां भी आंगन की ओर से दरवाज़े में आ गईं। माथे पर आंचल खींच कर बोलीं—"सुन बिट्टो, तू जरा सुकुल भैया के यहां बधाई दे आना।"

"कैसी बधाई ?" विद्या का मुंह खुला रह गया।

मुन्नी ने होठों पर आंचल रख लिया। मिश्र जी ने मुस्कान छिपाने के लिये मुंह फेर लिया। मां ने आंचल से छिपे होंठ दबा लिये।

तप्पी बैठक में आ गया। उस ने विद्या को उत्तर दिया—"दीदी, तुम्हें भी बधाई ! विनायक भैया के यहां वंश-वृद्धि हुई है।"

विद्या के होंठ खुले रह गये थे। विस्मय से आंखें भी फैल गईं। उस के मुख से निकल गया—"और हो गया, कितनी गिनती हो गई ?"

"नौ भाई-बहिन हो गये।" मुन्नी ने बता दिया।

मां ने दामाद की उपस्थिति के कारण आंचल ज़रा और खींच कर बेटी को डांट दिया—"क्या हुआ है तेरी अक्ल को ? किसी की आस-औलाद गिनते हैं !"

तप्पी बोल पड़ा—"मौसी, तुम दीदी को बधाई देने के लिये कह रही हो, प्रधानमंत्री सुनेंगे तो चिंता से गंजे हो गये सिर पर हाथ फेरने लगेंगे।"

"वाह, जनगणना करने वाले तो गिनेंगे !" भुवन ऊंचे स्वर में बोल पड़ा।

"जनगणना की क्या बात है प्रोफेसर साहब !" मुंशी कालीप्रसाद की आवाज़ सुनाई दी और वे बैठक के दरवाज़े पर प्रकट हो गये। मुंशी जी के विचार भुवन से नहीं मिलते परन्तु वह गली की बेटी और दामाद के प्रति सद्-भावना रखते हैं। मुंशी जी रिटायर्ड हैं। उन का अधिकांश समय बैठक की खिड़की से गली के मोड़ और सड़क पर झांकने में बीतता है। इस से गली के आचार-व्यवहार पर उन की नज़र रहती है और समय भी कटता है। विद्या और भुवन को रिक्शा-टांगे से उतरते देखते हैं तो वे भी आ जाते हैं। बहन और जीजा के आने पर तप्पी, सड़क के मोड़ वाले बंगाली हलवाई के यहां से रसमलाई और तिकोने जरूर मंगवा लेता है और बड़े उत्साह से भुवन और विद्या के लिये, अपने खास टी-सेट में चाय बनवाता है। मुन्नी और विद्या की मां मुस्करा कर कह देती हैं कि मुंशी जी गली की बेटी और दामाद को आशीर्वाद देने तो क्या आते हैं, चाय और तिकोने उन्हें बुला लेते हैं।

मुंशी जी के प्रश्न का उत्तर तप्पी ने दिया—"विनायक सुकुल के यहां भैया

हुआ है न ! मौसी कहती कि जनगणना वालों को न गिनाया जाय ।"

मुंशी जी बोल पड़े—"जनगणना वालों को कैसे नहीं बताओगे ? कानूनन बताना होगा । जनगणना वालों को पूरी संख्या न बताना तो जुर्म है ।" मुंशी जी गली की ओर खिड़की के समीप रखे मोढ़े पर बैठ कर कहते गये, "गिनने-विनने से क्या होता है भैया, यह तो भगवान की देन है । सब अपने कर्मों से होता है ।"

"भाभी को किन कुकर्मों का दंड मिल रहा है ?" विद्या के मुख से निकल गया, "भाभी मुझ से पांच-छः बरस ही बड़ी होंगी । नौ बच्चे, क्या हालत हो गई है !"

भुवन बोल पड़ा—"डबल शिफ्ट पर प्रोडक्शन होगा तो मशीन जल्दी ही घिसेगी ।"

मुन्नी और विद्या ने होंठ दबा लिये परन्तु मुंशी जी तटस्थ भाव से बोले—"क्या कहती हो बिटिया !" मुंशी जी ने विद्या को सम्बोधन किया, "भगवान संतान सुकर्मों के फल में देते हैं कि कुकर्मों के फल में ?"

विद्या चुप न रह सकी । उसने पड़ोस के चाचा के अदब में स्वर दबा कर कह दिया—"भगवान संतान ही देते हैं, मां बनने वाली की यातना का ख्याल नहीं करते । संतान का पेट भरने, पालने-पोसने का इंतजाम नहीं करते । बच्चों की और भाभी की हालत तो देखिये !" विद्या खिन्नता वश न कर सकी, "भाभी पेट फूली मकड़ी की तरह हो गई हैं । वही हालत बच्चों की है । विनायक भैया सब मिला कर डेढ़ सौ भी नहीं पाते होंगे । नौ बच्चे, खुद दो जने और मां—बारह प्राणी क्या खाते-पहनते होंगे ? तिस पर अच्छे-बुरे दिन में दवा-दारू की जरूरत और बच्चों की स्कूल की फीसें, किताबें-कापियां । यह क्या मनुष्यों का जीवन है ?"

भुवन गंभीर हो गया । विद्या की ओर देख कर बोला—"तुम लोग गली में स्त्रियों को कुछ समझाती क्यों नहीं, यहां काफी पढ़ी-लिखी स्त्रियां भी हैं । मिसेज़ दुबे को कहो—इस गली की स्त्रियों को भी फेमिली-प्लानिंग के बारे में कुछ समझायें । वे लोग गलियों में दवाईयां और दूसरे साधन मुफ्त भी बांटती हैं ।"

'फेमिली-प्लानिंग' शब्द सुन कर मुन्नी उठ गई और मां को बुला कर भीतर ले गई ।

विद्या को दबंग पति का सहारा है और दो वर्ष से वह समाज कल्याण में असिस्टेंट डाइरेक्टर है इसलिये कम झेंपती है । उसने कह दिया—"चाहिये तो

जरूर परन्तु गली की फूहड़ औरतें समझाने वालियों को ही कुछ उल्टी-सीधी बात न कह दें !"

मुंशी जी ने चिंता और भय की मुद्रा में हाथ जोड़ कर दुहाई दी—"ना भैया, 'फेमिली-प्लानिंग' की कारीगरी का पाप इस गली में सिखाकर, यहां बेशर्मी और गन्दगी मत फैलाइयेगा !"

विद्या ने संकोच से मुंशी जी की ओर से मुंह फेर लिया—"अम्मा के पास जा रही हूं ।" वह भी बैठक से चली गई परन्तु भुवन ने मुंशी जी की ओर भवें उठा कर पूछ लिया, "इसमें बेशर्मी और गन्दगी क्या है ?"

तप्पी बोल पड़ा—"हाइजिन या स्वास्थ्य-रक्षा के उपायों में क्या निर्लज्जता है ?"

मुंशी जी झुंझला उठे—"ऐसी निर्लज्जता और व्याभिचार के उपायों को आप स्वास्थ्य-रक्षा कहते हैं ? यह अच्छी स्वास्थ्य-रक्षा हुई । विनोबा जी ने कहा है—जिस में संतान का पालन-पोषण करने की सामर्थ्य नहीं, वह संयम से रहे और कहा है कि आप वासना को वश में नहीं कर सकते तो उसका फल स्वीकार कीजिये ।"

तप्पी ने मुंशी जी को चुनौती दी—"वासना का फल ? आप तो कह रहे थे संतान सुकर्मों के फल से होती है । इसका मतलब हुआ, वासना सुकर्म है ।"

मिश्र जी ने भांजे को स्नेह से डांट दिया—"तुम सदा उल्टी साखी चलाते हो । वासना सुकर्म कैसे हो सकती है ? वासना ही तो सब पापों का मूल है ।"

मुंशी जी ने तप्पी की चुटकी के बदले चुटकी ली—"अरे भाई, 'माडर्न' लोग हैं । वासना को सुकर्म नहीं कहेंगे तो इन्हें आज़ादी कैसे मिलेगी ?"

तप्पी गंभीरता से बोला—"वासना को आज़ादी आप ही कह सकते हैं, हम तो उसे प्राकृतिक बंधन कहते हैं और उन बंधनों को कम कष्टप्रद बनाने की बात सोचते हैं । सम्पूर्ण चिकित्सा-शास्त्र का यही प्रयोजन है ।"

मुंशी जी बोल उठे—"तुम्हारी आधुनिक सभ्यता सिवाय वासना की पूजा के और है क्या ?

भुवन ने मुंशी जी से पूछ लिया—"वासना किसे कहते हैं ? वासना से अभिप्राय क्या है ?"

मिश्र जी ने पड़ोसी के आदर में दामाद को चुप करा देना चाहा—"यह भी कोई पूछने की बात है, सब जानते हैं वासना क्या होती है ? सभी धर्मों ने,

सभी महात्माओं ने वासना की निन्दा की है।"

भुवन ने ससुर के प्रति आदर में संयम से उत्तर दिया—"धर्म और नैतिकता अतिवासना से बचने का उपदेश देते हैं। वासना तो 'अर्ज आफ लाइफ'—जीवन की प्रवृत्ति का नाम है। वह तो जीवों की प्रकृति है। यदि वासना न हो तो सृष्टि न चले।"

मुंशी जी ने विरोध किया—"वाह, वासना तो चीज़ ही बुरी है। उससे जीव अन्धा हो जाता है। महात्माओं ने सदा उसकी निन्दा की है। मनुष्य वासना के वश में हो जाय तो पशु हो जाता है। वासना तो पाप है।"

तप्पी ने पूछ लिया—"तो क्या पशु भी पाप करते हैं? पशुओं की वासना तो ईश्वर और सृष्टि की देन और प्रकृति का अंग होती है। ऐसे ही मनुष्य की वासना भी प्राकृतिक है। महात्मा और ऋषि-मुनि भी उसी से पैदा हो जाते हैं। जीव प्रकृति-दत्त वासना के आधीन रहते हैं और मनुष्य वासना को वश में, सीमा में रखने के उपाय करता है इसीलिये उसने संतति-निरोध के उपाय बनाये हैं। मनुष्य वासना में समाप्त नहीं हो जाना चाहता। उसके हानिप्रद फल से बचना चाहता है इसीलिये अपने उत्तरदायित्व और परिवार की संख्या नहीं बढ़ाना चाहता।"

मुंशी जी ने फिर विनोबा जी की दुहाई दे कर कहा—"अधिक सन्तान नहीं चाहते तो वासना का दमन करो। गांधी जी भी सन्तान निरोध के कृत्रिम उपायों के विरुद्ध थे। उन्होंने भी वासना के दमन का उपदेश दिया है।"

भुवन चिढ़ गया—"महात्मा जी ने जिस आयु में 'आत्म-कथा' लिख कर वासना के दमन का उपदेश दिया है, उस आयु में तो विनायक भैया भी वासना के दमन का उपदेश देने लगेंगे। जवानी में तो महात्मा जी जैसे पुराने तपोवनों में रहने वाले ऋषि, जहां-तहां सुन्दरियों को सन्तान का वरदान बांटते फिरते थे। उनकी संतानें मल्लाहों तक के घरों में खेलती थीं।"

तप्पी बोल उठा—"धर्मोपदेशों से तो मनुष्य न वासना का दमन कर सका, न वासना के फल से बच सका है। चिकित्सा-विज्ञान का विकास ही मनुष्य को सब प्रकार की वासनाओं, असंयमों और भूल-चूक के फलों से बचा सकता है। संतति-निरोध की प्रक्रिया, चिकित्सा सम्बन्धी उपायों के अतिरिक्त और क्या है?"

मुंशी जी झुंझला उठे—"हम तो कहते हैं सत्यानाश हो ऐसे चिकित्सा-शास्त्र का, जिससे संसार की नैतिकता धर्म-संयम और पाप का भय ही समाप्त

हो जाये ।"

भुवन बोला—"मुंशी जी, धर्म-संयम और पाप के भय का उपदेश देने वालों की महिमा तो यह है कि यूरोप में जब गनोरिया और सिफलिस के इलाज का आविष्कार हुआ तो वहां के सबसे बड़े दया-धर्म के ठेकेदारों, धर्म-गुरुओं और मठाधीशों ने फतवा दे दिया था कि ईश्वर ने यह रोग व्यभिचार का दण्ड देने के लिये बनाये हैं। इन रोगों के इलाज का आविष्कार करना, ईश्वरीय न्याय और धर्म में हस्ताक्षेप करना है···।"

भुवन की बात में तप्पी बीच में ही बोल पड़ा—"गनोरिया, सिफलिस और अवांच्छित गर्भ का इलाज करना यदि भगवान के न्याय में हस्ताक्षेप है तो हैज़े, मलेरिया, निमोनिया और कान के दर्द का इलाज करना भी भगवान के न्याय में हस्ताक्षेप है। हैज़ा और कान में दर्द, भगवान प्रसन्न होकर आशीर्वाद के रूप में नहीं देते होंगे। इलाज की आवश्यकता तो किसी न किसी भूल या असंयम के कारण ही पड़ती है।" तप्पी ने नज़र मुंशी जी से चुरा ली। इसका कारण था, दो वर्ष पहले मुंशी जी को चाट की चाट के कारण हैज़ा हो गया था। तब तप्पी ने ही तुरन्त उपचार किया था। मुंशी जी की बड़ी बहिन, गली की बुआ के कान में सदा ही दर्द बना रहता है।

भुवन ने अपनी बात पूरी की—"धर्म और भगवान के ठेकेदार तो मनुष्य को सदा ही तड़पते देखना चाहते हैं। मनुष्य के अज्ञान और संकट में ही उनकी बन आती है। जिन रोगों का इलाज सर्वसाधारण को नहीं मालूम, उनसे रक्षा के लिये ही पंडितों, मौलवियों और जादू-टोने वालों को पुकारा जाता है। धर्म के ठेकेदार तो मनुष्य को सदा तड़पता और व्याकुल ही देखना चाहते हैं नहीं तो मनुष्य उनकी शरण में क्यों आये ?"

विद्या एक हाथ में रसमलाई की प्लेट और दूसरे में तिकोनों की प्लेट लिये बैठक में आ गयी। उसने अन्तिम वाक्य सुन लिया था। पति की आंखों में देख कर पूछ लिया—"क्या 'बन्द रोड' वाले बाबा जी की बात बता रहे हैं ?"

भुवन जोर से हंस पड़ा—"जी हां, आजकल एक बाबा जी आये हुये हैं। भक्तों को भभूत देते हैं। 'पान में रख कर खा लो तो संतान का भय न रहे। अब तक बाबा लोग संतान होने के लिये भभूत दिया करते थे। पहले पत्रों में विज्ञापन हुआ करते थे—इस गोली से निश्चय संतान की आशा हो। अब विज्ञापन रहते हैं—इस गोली से संतान की आशंका न रहे। स्पष्ट है, अवांच्छित

संतान देश के सर्वसाधारण के लिये भय और त्रास का कारण बन गई है। उस भय और त्रास से रक्षा का विश्वास-योग्य वैज्ञानिक उपाय—परिवार-नियोजन के उपचार हैं परन्तु सर्वसाधारण को संकट में भगवान की कृपा और आशीर्वाद बेचने वाले धर्म-ध्वजी, परिवार नियोजन को पाप बतायेंगे।"

मुंशी जी कुछ बोलते तो परन्तु रसमलाई और तिकोने देख कर मुंह में पानी भर आने के कारण आगे बहस न चला सके।

मिश्र जी की बैठक में 'फैमिली प्लानिंग' के कृत्रिम या वैज्ञानिक उपायों के औचित्य के सम्बन्ध में बहस चल पड़ी थी। मुंशी जी ने भुवन और तप्पी को विनोबा जी के उपदेश का प्रमाण देकर फटकार बता दी थी—वासना को वश न कर सकना और संतान के उत्तरदायित्व से बचने का यत्न करना पाप है। यह प्रकृति और ईश्वर की इच्छा में दखल देना है।

भुवन की भवें विस्मय से मुंशी जी की ओर उठ गईं—"प्रकृति और ईश्वर की इच्छा का क्या मतलब है?"

मुंशी जी का पुत्र देवीप्रसाद अपने पिता की सहायता के लिये बोला—"प्रकृति और ईश्वर की इच्छा का मतलब है—'ला आफ नेचर'। 'नेचर' अपने नियमों के अनुसार चलती है। वही 'गाड' का 'विल' है।

तप्पी मुस्कराया—"प्रकृति और ईश्वर की इच्छा का अर्थ 'ला आफ नेचर' है, 'गाड की विल' है, यह कह देने से क्या स्पष्ट हो गया? यह बताइये, आप 'गाड की विल' को कैसे जानते हैं?"

मुंशी जी अपने पुत्र की सहायता में बोले—"सृष्टि को कौन बनाता है? सम्पूर्ण सृष्टि को भगवान ही तो बनाते हैं।"

देवीप्रसाद ने पिता की बात की व्याख्या की—"आप इस बात से इनकार नहीं कर सकते कि सृष्टि को भगवान ही बनाते हैं। वही उस के क्रम और नियम को—कारण, कार्य और फल को निश्चित करते हैं। जो भगवान का बनाया हुआ और निश्चित किया हुआ क्रम है, वही भगवान की इच्छा है।"

मिश्र जी ज़रा मुस्कराये—"भगवान के लिये इच्छा, कारण, कार्य और फल की बात कहना शास्त्र के विरुद्ध है। इस का अभिप्राय तो यह होगा कि भगवान भी इच्छा, कर्म और फल के बंधनों से बंधे हैं।"

मुंशी जी ने मिश्र जी की आध्यात्मिक बात का उत्तर दिया—"भगवान

के इच्छा और फल में बंधने का क्या मतलब हुआ ? सृष्टि को भगवान ने नहीं तो किस ने बनाया है ? यह उन का कर्म है तो यह उन की इच्छा भी हुई। भगवान तो भगवान हैं। उन्हें इच्छा और फल में कौन बांध सकता है ? वे तो लीलामय हैं।"

विद्या ने किसी की ओर भी न देख कर स्वगत कह दिया—"यह खूब रही ! विनायक भैया के यहां भगवान की इच्छा के फलस्वरूप एक पर एक होते चले जा रहे हैं और मुसीबत भोग रही हैं भाभी।"

भुवन ने काम-काज की बात को आध्यात्म के सीमारहित तर्क में उलझते देखा तो बोल पड़ा—"न तो किसी ने भगवान को देखा है, न भगवान को सृष्टि बनाते देखा है परन्तु संसार प्रत्यक्ष अनुभूत सत्य है। आप काम की बात सोचिये, मनुष्य का जीवन भगवान की इच्छा और प्रकृति के क्रम का विरोध कर सकने से ही संभव होता है। मनुष्य यदि प्रकृति के क्रम और भगवान की इच्छा के आगे सिर झुकाता रहे तो जानते हो क्या होगा ? वही अवस्था जो अबीसीनिया के ईश्वर-भक्त ईसाईयों की हुई थी।"

देवीप्रसाद ने विस्मय से पूछ लिया—"अबीसीनिया के ईश्वर भक्त ईसाईयों ने क्या किया था ?"

भुवन ने उत्तर दिया—"एलबर्ट कामु के उपन्यास 'प्लेग' में ओरान नगर में प्लेग की महामारी का वर्णन है। ओरान के एक पादरी ने व्याख्यान में कहा है कि अबीसीनिया में प्लेग पड़ने पर वहां के ईसाइयों ने महामारी को ईश्वर की इच्छा के अनुसार अपने अपराधों का दंड मान लिया था। उन्होंने ईश्वर की इच्छा को स्वीकार करने के लिये प्लेग से मर जाने वाले लोगों के कपड़ों में लिपट-लिपट कर स्वयं रोग को ग्रहण किया और स्वयं ईश्वर की इच्छा पूर्ण करने के लिये समाप्त हो गये।"

मुंशी जी ने कहा—"ये तो गप्प है। ऐसा कहीं हो सकता है ?"

तप्पी बोल पड़ा—"गप्प क्यों है ? आप केवल अपने ही सम्प्रदाय के लोगों को ईश्वर-भक्त समझते हैं। यदि विनोबा भावे और गांधी जी ईश्वर से प्रेरणा पाने का दावा कर सकते हैं तो मुसलमान और ईसाई ईश्वर भक्त ऐसा दावा क्यों नहीं कर सकते ? यदि आप वास्तव में ईश्वर की इच्छा का पालन करना चाहते हैं तो अबीसीनिया के ईश्वर-भक्तों का अनुकरण कीजिये। केवल प्लेग ही क्या, प्रकृति का क्रम और ईश्वर की इच्छा तो किसी भी अवस्था में जीवों

को अधिक देर तक जीवित नहीं रहने देना चाहती। वनों में रहने वाले अथवा जल में रहने वाले जीव ईश्वरीय और प्रकृति के विधान के अनुसार रहते हैं, उनका जीवन कैसे और कितने दिन चलता है ?"

मिश्र जी ने तप्पी को स्नेह से धमकाया—"तुम भी क्या बका करते हो ! प्रकृति का क्रम और भगवान की इच्छा यदि जीवों को जीवित न रहने देना चाहे तो कोई एक क्षण भी जीवित रह सकता है ? कैसी असंगत बात करते हो ! भगवान की इच्छा के बिना तो पत्ता भी नहीं हिल सकता, कोई जीव एक सांस नहीं ले सकता। भगवान सृष्टि का निर्माण करते हैं, जीवों को उत्पन्न करते हैं और वही चाहते हैं कि जीव जीवित न रह सकें !"

मुन्नी भी बड़ी बहन की तरह किसी को न सुना कर बोल पड़ी—"भगवान के तो तीनों ही गुण हैं—सृष्टि और पालन उनका गुण है, तो संहार भी उन्हीं का गुण है परन्तु हम संहार से बचना चाहते हैं।"

तप्पी ने मुन्नी की बात अनसुनी कर खीझ में मुंशी जी को सम्बोधन किया—"भगवान की इच्छा के बिना तो पत्ता भी नहीं हिल सकता, आकाश से जल की बूंद भी नहीं गिर सकती। पिछले वर्ष गोमती में बाढ़ किसकी इच्छा से आई थी ? उस बाढ़ से विनाश को रोकना, ईश्वर की इच्छा में दखल देना ही था। जो लोग बाढ़ में बहते जा रहे थे, उन्हें निकालना भी ईश्वर की इच्छा और प्रकृति के क्रम में बाधा डालना ही था।"

मिश्र जी ने तप्पी को फिर डांटा—"आत्म-रक्षा के लिये प्रयत्न की शक्ति और बुद्धि भी तो भगवान ही देते हैं। यह तो नहीं कि मनुष्य आत्म-रक्षा का प्रयत्न ही न करे। भगवान ने बुद्धि किस लिये दी है ?"

मुन्नी ने लाड़ के स्वर में पिता को टोक दिया—"चच्चा, यह खूब रही ! भगवान क्या सृष्टि और संहार की शतरंज खेलते हैं ? मनुष्य को आत्म-रक्षा के प्रयत्न के लिये बुद्धि और शक्ति दे देते हैं और स्वयं संहार के मोहरे चलाते हैं। देखते हैं, मनुष्य अपने आप को कैसे बचाता है !"

भुवन साली की बात से चहक उठा—"प्रकृति का सम्पूर्ण क्रम सृष्टि और संहार की शतरंज है, जिसमें शायद भगवान की इच्छा और प्राकृतिक शक्तियां जीवों को अधिक से अधिक मात्रा में उत्पन्न करके उनके संहार का खेल खेलती हैं। जिन जीवों में जितनी बुद्धि होती है, उसी के अनुसार वे आत्म-रक्षा का उपाय करते हैं। मनुष्य यदि भगवान द्वारा बनाई प्राकृतिक अवस्थाओं में ही

रहता तो बनमानुष ही बना रहता । पचास वर्ष पूर्व आप शीतला, प्लेग, हैजा, मलेरिया सब को भगवान की इच्छा और प्रकृति का क्रम कहते थे परन्तु मनुष्य ने वैज्ञानिकों के तप के फल से, भगवान के बनाये प्रकृति के क्रम का उपाय कर लिया है । संभव है इससे कुछ ईश्वर-भक्तों को धर्म की हानि जान पड़ी हो परन्तु मनुष्य पहले की अपेक्षा आज रोगों से अधिक निर्भय है । आप बीस वर्ष पहले की बाल-मृत्यु संख्या को याद कीजिये, उस समय इस देश में साठ प्रतिशत बच्चे दो वर्ष की आयु से पूर्व ही मर जाते थे, अब पच्चीस प्रतिशत भी नहीं मरते तो देश की जन-संख्या बढ़ेगी या नहीं ?"

मुंशी जी प्रसन्नता से बोल पड़े—"अरे, यही तो हम कहते हैं कि यदि आप प्रकृति के क्रम में दखल देंगे तो परिणाम बुरा होगा । वैज्ञानिक महामारियों और रोगों का उपाय करके प्रकृति पर विजय पाने का अहंकार करते हैं कि हम मनुष्य को प्रकृति की इच्छा से मरने नहीं देंगे । प्रकृति द्वारा निश्चित मृत्यु के मार्ग में बाधा डालने का परिणाम क्या हुआ ? मनुष्य को बीमारियों से क्या स्वयं अपने से ही डर लगने लगा । मनुष्य की इससे बड़ी पराजय क्या होगी ? मनुष्य को भय लग रहा है कि हमारी संख्या बढ़ जायेगी, इसलिये मनुष्यों को पैदा न होने दो ।"

विद्या ने विस्मय प्रकट किया—"तो क्या बच्चों को रोगों से मर जाने देना चाहिये !"

मुंशी जी झेंप गये—"अरे, हम कब कहते हैं ?" उन्होंने हाथ से भुवन और तप्पी की ओर संकेत किया, "यही लोग और तुम्हारे नास्तिक प्रधानमंत्री ही जनसंख्या बढ़ने की शिकायत कर रहे हैं ।"

तप्पी बोला—"हम तो यह कहते हैं, जो पैदा हों उनकी अकाल मृत्यु न हो । उतने ही पैदा हों जितने ढंग से जी सकें । यही ईश्वर की इच्छा समझी जानी चाहिये । मनुष्य ने जहां बीमारियों का उपाय किया है, वहां उसे अपनी जनसंख्या बढ़ने की बीमारी का भी उपाय करना चाहिये ।" वह उत्तेजना में कह गया, "संतान-निरोध के कृत्रिम या वैज्ञानिक उपाय और साधन भी वैसे ही हैं जैसे कि स्वास्थ्य-रक्षा के दूसरे उपाय ।"

मुंशी जी भड़क उठे—गर्भ-हत्या को आप स्वास्थ्य-रक्षा कहते हैं ?"

तप्पी ने भी उत्तेजना में कह दिया—"जब गर्भ बनने ही नहीं दिया जायेगा तो उसकी हत्या कैसे होगी ?"

विद्या और मुन्नी संकोच में उठ कर आंगन की ओर चल दीं। मिश्र जी भी सुनना-सुनना कहते हुये उन के पीछे चले गये।

तप्पी उत्तेजना में कह गया—"संतति-निरोध के वैज्ञानिक उपाय तो गर्भ-हत्या के उपाये नहीं, वास्तव में गर्भ-निरोध के ही उपाय हैं।"

मुंशी जी ने भी छोकरों की उच्छृङ्खल बहस में बैठना उचित नहीं समझा और उठ कर चले गये।

देवीप्रसाद मुंशी जी के चले जाने के बाद पिता की ओर से बोला—"यदि गर्भ-हत्या पाप है तो गर्भ का निर्माण कर सकने वाले जीवाणुओं की हत्या भी पाप है।"

तप्पी ने पूछ लिया—"तुम तो डाक्टरी पढ़ रहे हो, मनुष्य के जीवन की रक्षा करने के लिये कितने प्रकार के जीवाणुओं—मलेरिया, हैजा, पेट में रहने वाले पेचिश के जीवाणुओं की हत्या नहीं होती ?"

बैठक में तीन मर्द ही रह गये थे। वे प्रायः समवयस्क थे। भुवन देवीप्रसाद की ओर झुक कर बोला—"क्यों जी, तुम्हारा विवाह हुये चार बरस हो गये ? बस एक लड़की है न डेढ़ बरस की ! इतने समय में तुम्हारे पड़ोसी विनायक भैया के दो बच्चे और हो गये। तुम लड़की होने के बाद से नामर्द हो गये ?"

तप्पी बोल उठा—"इन्होंने महात्मा जी के उपदेश के अनुसार भाभी को बहिन समझ लिया है।"

देवीप्रसाद का चेहरा लाल हो गया। उसने भुवन को उत्तर दिया—"नामर्द होगे तुम ! तुम्हारे भी पांच बरस में एक ही लड़का तो हुआ है।"

भुवन बोला—"हम तो और चाहते नहीं थे, नहीं होने दिया। हम तो इस बात में ईश्वर की इच्छा पर निर्भर नहीं करते।"

देवीप्रसाद ने कहा—"ये तो चांस की बात है या भगवान की इच्छा कह लो।"

तप्पी देवीप्रसाद की आर अधिक झुक कर बोला—"तुम ने बीबी को बहन तो समझा नहीं होगा ! संतान नहीं हुई तो चांस से या भगवान की इच्छा से जीवाणुओं की हत्या तो होती रही न ? अच्छा यह बताओ, यदि चांस और भगवान की इच्छा साथ न दे तो क्या किया जाये ? उपाय होते हुये भी उसका प्रयोग न करें ?"

भुवन गम्भीर हो गया—"तुम बताओ, क्या विनायक सुकुल चाहते थे कि

उन के नौ लड़के-लड़कियां हो जायें ? उनके न चाहने पर भी हो गये । वे बार-बार प्रकृति के मोहक जाल में फंस कर धोका खाते रहे । विनायक की सुकुलाइन तो देहात की अनपढ़ लड़की है । भगवान की इच्छा और कर्म-फल समझ कर जैसे-तैसे सहे जा रही है । यदि सुकुलाइन कस्बे या नगर की अच्छी पढ़ी-लिखी लड़की होतीं तो अपने जीवन को क्या समझती ? इस युग में सभी लड़कियां पढ़-लिख रही हैं । उनमें अपने व्यक्तित्व की भावना और स्वाभिमान पैदा हो रहा है । क्या कोई पढ़ी-लिखी, स्वाभिमानी व्यक्ति की तरह जीवन बिताने वाली स्त्री, पूरी आयु चूल्हे-चौके और सौर में बिताने के लिये तैयार होगी ? एक-दो बच्चों की उमंग स्त्री-पुरुषों को हो सकती है लेकिन बच्चों को जीवन की चिंता और बोझ कौन बना लेना चाहेगी ?"

तप्पी आगे खिसक आया—"विनायक और उन जैसे लोग, तुम्हें और इन्हें (भुवन को) अपनी पत्नियों के साथ सिनेमा-बाजार और उत्सव-मेले में आते जाते देखते हैं तो ईर्ष्या भरी आलोचना करने लगते हैं परन्तु मन में सोचते हैं—हाय, हमें ऐसा अवसर न मिला । सभी लोग पढ़ी-लिखी लड़कियों से शादी करना चाहते हैं । सब लोग लड़कियों को पढ़ाने-लिखाने पर मज़बूर हो गये हैं । सभी लोग यथा-सम्भव अच्छे स्तर का जीवन बिताना चाहते हैं । पढ़ी-लिखी लड़कियों में भी विवाह के बाद अपना समय सार्थक करने और कुछ कमा कर अच्छे स्तर पर रहने की प्रवृत्ति बढ़ रही है ।"

विद्या पति को घर लौट चलने की चेतावनी देने के लिये बैठक में आयी थी । वह तप्पी के समर्थन में बोल पड़ी—"स्त्रियां ऐसा क्यों न करें ? मैट्रिक इंटर तक पढ़ी-लिखी लड़की क्या महाराजिन और महरी के ही काम के योग्य समझी जानी चाहिये ? अगर उसे महाराजिन और महरी ही बनना है तो उसकी शिक्षा पर पैसा फूंकने और उसके मन में असंतोष जगाने से लाभ ही क्या है ? पुरुष पढ़-लिख कर सम्मानजनक और अच्छी आमदनी का श्रम करना चाहता है । स्त्रियों में क्या स्वाभिमान और आत्मसम्मान नहीं होता ? स्त्रियां जिन विभागों और दफ्तरों में काम करने लगी हैं, पुरुषों से कम काम तो नहीं कर रहीं !"

देवीप्रसाद बोल उठा—"सभी स्त्रियां घरों के बाहर काम करने लगेंगी तो भारत भी योरुप हो जायगा । वे सैर के लिये और सिनेमा-क्लब में जा सकेंगी । घरों में मेज-कुर्सी, कालीन हो जायेंगे, स्कूटर और मोटर भी हो सकते हैं । घर होटल बन जायेंगे, जीवन का माधुर्य नहीं रहेगा ।"

विद्या चिहुंक उठी—"तुम्हारा जीवन तो अब भी बहुत कुछ फीका हो गया होगा ! असली माधुर्य तो तुम्हारे दादा-दादी ने भोगा होगा । तुम्हारी दादी सुबह उठ कर पहले चक्की में अनाज पीसती होंगी, फिर सिर पर घड़ा रख कर कुएं से पानी लाती होंगी । उसके बाद गोबर से सारा घर लीपती होंगी । घर के दो-चार मैले कपड़े धोती होंगी । घर में यदि गाय-भैंस होगी तो दही भी बिलोतीं होंगी । दादा खा-पीकर लेटते होंगे तो पांव भी दबाती होंगी । जब वह गर्मी में सो जाते होंगे तो पंखा करती रहती होंगी । तुम्हें बिजली के पंखे से वह मिठास कहां मिलती होगी ? भाभी को पंखा करने के लिये खड़ा कर लिया करो ! हो सके तो जीवन का माधुर्य पाने के लिये अपने घर से नौकर-नौकरानी, महरी, धोबी, मेहतरानी सब हटा दो…।"

तत्पी ने देवीप्रसाद का हाथ पकड़ कर पूछा—"एक बात कहूं, बुरा तो नहीं मानोगे ? डाक्टरी पास करके दो-ढाई सौ रुपये की तनखाह पाओगे, सौ-दो सौ प्राइवेट प्रैक्टिस से कमा लोगे ! एक नवाब के यहां तुम्हें दो हजार माहवार नौकरी दिला दें ? तुम्हारा काम होगा, नवाब साहब को नित्य अपने हाथ से मालिश करके नहलाना, उनके हाथ-पांव के नाखून साफ रखना, समय-समय पर उनके जूते और पोशाक बदलवा देना, उनका बिस्तर ठीक करना, उनके लिये खाना खुद परोसना, उनके व्यक्तिगत बर्तन और कपड़ों को साफ रखना ……।"

देवीप्रसाद के मुंह से गाली निकल गयी—"ऐसी-तैसी तुम्हारे नवाब साहब की और ऐसी-तैसी तुम्हारी !"

विद्या चहक उठी—"अब क्यों बुरा लगा ? स्त्रियां बेचारी पढ़-लिख कर पुरुषों की व्यक्तिगत सेवा करती रहें, केवल रोटी-कपड़े के लिये ? क्या उन में कुछ स्वाभिमान नहीं ?"

भुवन ने पत्नी का समर्थन किया—"दूसरों की शारीरिक सेवा के लिये विवश होना मनुष्यता का अपमान है । जिसे भी अवसर मिलता है, दूसरों की शारीरिक सेवा से बचना चाहता है । तुम जानते हो, अनपढ़ होकर भी लोग घरेलू नौकर और झाड़ू-बुहारू करने की अपेक्षा चपरासी बन जाना या रिक्शा चला लेना ही अधिक सम्मानजनक समझते हैं । पति-पत्नि के प्रेम और भावों के माधुर्य का दास बना देना नहीं है । प्रेम और जीवन के माधुर्य का अर्थ—पूर्ण समता और सहयोग है, सेवा करना-कराना नहीं ।"

विद्या फिर बोल पड़ी—"यदि स्त्रियों को जीवन भर केवल घरेलू नौकरों के ही कामों—चूल्हा-चौके, घर के कपड़ों और बच्चों के आराम की ही चिन्ता करनी है तो उन्हें पढ़ाने-लिखाने की क्या आवश्कता है ? जब उन्हें शिक्षा दी जाती है, अच्छे कामों के योग्य बनाया जाता है तो उनका कर्त्तव्य और अधिकार है कि अपनी सामर्थ और योग्यता के अनुसार, समाज के सम्मानित कार्यों में सहयोग दें।"

देवीप्रसाद हंस दिया—"जरूर कराओ काम ! यहां मर्दों को ही नौकरियां नहीं मिल रही हैं…खैर यह बताइये, घर के काम भी आखिर कोई करेगा या नहीं ?"

विद्या ने उसकी हंसी का जवाब मुस्कान से दे दिया—"निकम्मे पुरुष ऐसा ही स्वामित्व करते रहेंगे ? जो जिस योग्य होगा, उसे वैसा काम करना पड़ेगा। स्त्री होना अयोग्यता का प्रमाण या अपराध नहीं है।"

भुवन गंभीरता से बोला—"यदि नारी को समाज के स्वाभिमानी, आत्म-निर्भर व्यक्ति की तरह रहना है तो वह हर दूसरे साल सौर में नहीं बैठ सकेगी। वह अपना सामाजिक उत्तरदायित्व और व्यवसाय, वैसी शारीरिक दशा में कैसे निबाह सकेगी ? समाज में कार्य करने वाली स्त्रियों को भी संतान की उमंग जरूर होगी। वे एक-दो, अधिक से अधिक तीन संतानों की इच्छा कर सकती हैं।"

विद्या फिर बोल पड़ी—"इससे अधिक बच्चे ढंग से पाल ही कौन सकता है ? खरगोश और पिल्ले पालने हों तो बात दूसरी है।"

भुवन ने बात पूरी की—"सुकुलाइन भाभी की श्रेणी, प्रकृति और स्वभाव की स्त्रियां चाहे जो करें परन्तु स्वाभिमानी और सामाजिक कार्यों में सहयोग देने वाली स्त्रियों के लिये अवांच्छित संतानों का मतलब जीवन की बरबादी है। वे संतति-निग्रह के विश्वास योग्य वैज्ञानिक साधनों की उपेक्षा कैसे कर सकती हैं ?"

विद्या बोल पड़ी थी तो कुछ और भी कह गयी—"नारी के लिये मां बनना कोई मामूली बात तो है नहीं ! संतान पिता को भी प्यारी लगती है परन्तु संतान के लिये कष्ट मां ही भोगती है। ऐसे जोखिम के काम को स्त्री चांस पर कैसे छोड़ सकती है !"

संकोच से विद्या का चेहरा लाल हो गया था परन्तु उसने कह ही दिया—"मां बनने न बनने का निश्चय और निर्णय पूर्णतया मां की ही इच्छा और

सुविधा से होना चाहिये, पिता की इच्छा से हरगिज नहीं।"

भुवन ने पत्नी का संकोच मिटाने के लिये उसका समर्थन किया—"यदि नर-नारी की समता और नारी की स्वतंत्रता का सिद्धान्त मानना है तो हमें नारी की प्राकृतिक परवशता का भी उपाय करना होगा। पति-पत्नी के पारस्परिक आकर्षण और प्रेम के परिणाम को पति शारीरिक रूप से नहीं भोगता, पत्नी को वह परिणाम भोगने की परवशता क्यों हो ? वह अपने संतोष और उल्लास के लिये चाहे तो उसका स्वागत करे और चाहे तो उस परिणाम से बची रहे।" भुवन ने देवीप्रसाद की ओर तर्जनी उठा कर कहा, "नारी की शारीरिक निर्बलता के बावजूद, वैज्ञानिक साधनों के आविष्कारों ने नारी को नर के समान स्तर पर खड़ा कर दिया है परन्तु अब समाज के लिये उसकी सबसे महत्वपूर्ण शक्ति—सृजन की शक्ति ही उसकी परवशता बन जाती है। संतति-निरोध के वैज्ञानिक साधन नारी की उस परवशता से स्वतंत्रता के उपाय हैं। इन उपायों से नारी की मातृत्व की शक्ति, उसकी प्राकृतिक परवशता नहीं रह जाती बल्कि उसकी इच्छा और उल्लास की पूर्ति का साधन बन जाती है। यह वैज्ञानिक आविष्कारों के वरदान के उपाय ही नारी को पुरुष के समान स्वतंत्रता दे सकते हैं। वह वैज्ञानिक उपाय ही प्रकृति पर मनुष्य की सबसे बड़ी विजय और सभ्यता तथा संस्कृति को बढ़ाने वाले वरदान हैं।"

धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र और धर्म-प्राण प्रजा

एक नगर में साम्प्रदायिक दंगा हो जाने का समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ था। दूसरे नगरों में भी साम्प्रदायिक उत्तेजना न फैल जाये, इसलिये भिड़ जाने वाले सम्प्रदायों के नाम पत्रों में नहीं दिये गये थे।

काफी चौपाल में समाचार के प्रसंग पर बहस चल पड़ी। बनर्जी ने कहा—"समाचारों पर पर्दा डालने से क्या लाभ? सब लोग जानते हैं कि दंगा किन सम्प्रदायों में हुआ होगा?"

देव ने प्रसंग को जरा नरम करने के लिये कहा—"दंगा सभी सम्प्रदायों में हो सकता है। साम्प्रदायिकता में असहिष्णुता और उत्तेजना की भावना सदा ही रहती है। साम्प्रदायिक विश्वासों में परस्पर भेद हैं। उन भेदों के प्रभाव परस्पर-विरोध के अतिरिक्त किस बात में प्रकट हो सकते हैं?"

नायर ने कहा—"दुर्भाग्य यह है कि साम्प्रदायिक विश्वासों के भेदों को महत्व दिया जाता है। साम्प्रदायिक विश्वासों का मूल लक्ष्य एक है। सभी सम्प्रदाय मानव-मात्र की एकता और विश्व-बन्धुत्व में विश्वास करते हैं।"

भुवन मुस्कराया—"तुम सद्भावना से भेदों को दबा देना चाहते हो! सम्प्रदाय रहेंगे तो उन में भेद भी रहेंगे। सम्प्रदायों की ओर प्रवृत्ति रहेगी तो उन के प्रभाव कितने समय तक दबे रह सकेंगे? साम्प्रदायिक विश्वासों की दृष्टि में महत्व मूल तत्वों के सादृश्य का नहीं, परस्पर विश्वासों और व्यवहारों के भेद का ही है। इन भेदों को सद्भावना के उपदेशों से दूर कर सकने का विश्वास आत्म-प्रवंचना मात्र है।"

ज़हीर ने विस्मय प्रकट किया—"सद्भावना से विरोधों के भ्रम को दूर करने के लिये यत्न करना और मूल सत्यों पर सहमत होने के सुझाव आत्म-प्रवंचना कैसे हो सकती है? गांधी जी इसी के लिये बलिदान हो गये।"

भुवन बोला—"तथ्यों से मुंह मोड़ने को आप आत्म-प्रवंचना के सिवा और क्या कहेंगे ! गांधी जी ने साम्प्रदायिक भेदों को दूर करने की सद्भावना के लिये आत्म-बलिदान कर दिया। गांधी जी का आत्म-बलिदान भी साम्प्रदायिक विश्वासों की परस्पर-विरोधी भावनाओं को दूर न कर सका। जब तक साम्प्रदायिक दृष्टिकोण रहेंगे, विरोधी भावनायें रहेंगी।"

देव ने तर्जनी उठा कर कहा—"भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों में सौजन्य और सद्भावना की आशा, विरोधों के परिणाम में सहृदयता की आशा करना है। गांधी जी साम्प्रदायिक विश्वास अर्थात विरोध के कारणों को भी बनाये रखना चाहते थे और विरोध के परिणाम में सद्भावना भी चाहते थे। यह कैसे संभव हो सकता है ?"

भुवन ने टोका—"लोग अपने सम्प्रदायों को सब से बड़ी सद्भावना मानते हैं। सम्प्रदायों का संघर्ष सद्भावनाओं के विश्वासों का ही संघर्ष होता है। दो सद्भावनाओं की टक्कर से सद्भावना नहीं उत्पन्न हो सकती, संहार होगा। अरे भाई, दो जल भरे बादल टकराने से शान्ति नहीं बरसती, बिजली ही कड़कती है। साम्प्रदायिक भावना के परस्पर-विरोधी दृष्टिकोणों को महत्व दिया जायगा तो परिणाम, विरोध के अतिरिक्त और क्या होगा ?"

देव ने कहा—"गांधी जी ने भेदों के कारणों को मिटाने या उन्हें महत्व न देने के लिये कभी नहीं कहा। उन का उपदेश भेदों को यथावत् रखते हुये सह-अस्तित्व और एकता कायम करने का था। गांधी जी सहिष्णुता का उपदेश देते थे—'लेट अस एग्री टू डिसएग्री'। इस उपदेश से उन का अभिप्राय होता था—भेद होते हुये भी परस्पर विरोध न करें। इस वाक्य का दूसरा अर्थ और बहुत सीधा परिणाम होगा कि हम अपने विरोधों को स्वीकार कर लें, हमारे भेद दूर नहीं हो सकते। वही बात व्यवहार में हमारे सामने आ रही है। हम साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से अपने भेदों को बनाये रखने की नीति पर चल रहे हैं और उसी में अपनी शक्ति नष्ट कर रहे हैं।"

नायर ने समझाया—"गांधी जी ने तो भेदों को मिटाने का प्राण-पन से पूरा यत्न किया था। सब से बड़ा भ्रम तो साम्प्रदायिक लक्षों और धार्मिक भावनाओं को परस्पर-विरोधी मान लेना है। सभी धार्मिक विश्वास और उन का मूल तत्व एक है—मानव-मात्र की एकता और विश्व-बंधुत्व के व्यवहार से सृष्टि के आदि कारण ईश्वर का सान्निध्य प्राप्त करना। गांधी जी ने इसी बात पर बल दिया

है—ईश्वर अल्लाह तेरे नाम…।"

तप्पी ने टोका—"गांधी जी ने जरूर कहा है—'ईश्वर अल्लाह तेरे नाम' परन्तु कितने आदमी उन की बात मान सके ? भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय हजारों वर्षों से अल्लाह और ईश्वर की अपनी-अपनी व्याख्याओं और परिभाषाओं में विश्वास करते आये हैं। इन परिभाषाओं और व्याख्याओं के आधार पर ही सम्प्रदायों के धार्मिक ग्रंथों की रचना हुई है। गांधी जी के कहने से वे कैसे मान लें कि उन के सम्प्रदाय हजारों वर्षों से भ्रम में हैं। गांधी जो मनुष्य जीवन का लक्ष्य सांसारिक सफलता नहीं, ईश्वर प्राप्ति ही मानते थे। पारलौकिक और धार्मिक विश्वासों का दृष्टिकोण कभी हमें एक नहीं कर सकता। समाज में सहिष्णुता और सहयोग का आधार केवल सांझे सांसारिक हित का दृष्टिकोण ही हो सकता है।"

भुवन ने कहा—"यह भी आत्म-प्रवंचना है कि धार्मिक विश्वासों के मूल तत्वों में विरोध नहीं। साम्प्रदायिक विश्वासों का मूल तत्व सृष्टि की आदि-शक्ति को प्राप्त करना है। उस की आदि-शक्ति की पहचान और उस को प्राप्त करने के विधानों में ही सब झगड़ा है।"

तप्पी ने कहा—"ईश्वर के आदेशों और उस की भक्ति के उपचार के सम्बन्ध में सम्प्रदाय परस्पर सहमत नहीं हो सकते। क्या आप नहीं जानते, एक सम्प्रदाय की ईश्वर भक्ति, दूसरे सम्प्रदाय की दृष्टि में ईश्वरीय आदेश का विरोध और ईश्वर का अपमान हो सकता है ? कुछ सम्प्रदायों के अनुसार ईश्वर की पूजा उस की प्रतिमा द्वारा हो सकती है, कुछ के विचारों में ईश्वर की प्रतिमा बनाना अक्षम्य पाप है। इसे मूल तत्वों का विरोध नहीं तो क्या कहियेगा ? ऐसे धार्मिक विश्वास एक दूसरे को कैसे सह सकते हैं ? विश्वासों के ऐसे विरोध को विवशता में ही सहा जा सकता है।"

नायर ने विरोध किया—"आप उल्टी बात कह रहे हैं। धार्मिक विश्वासों का पारलौकिक दृष्टिकोण, मानव समाज में परस्पर भय और संघर्ष की सम्भावना को कम करता है या बढ़ाता है ?"

भुवन ने अपनी बात सुनाने के लिये हाथ उठाया—"तप्पी ने ठीक कहा है, धार्मिक विचार इस संसार के आचार-व्यवहार को परलोक के लक्ष्य से निश्चित करते हैं। परलोक सांसारिक सुख, शान्ति और विश्व-बंधुत्व से प्राप्त नहीं होता, पाप और पुण्य से प्राप्त होता है। धार्मिक विश्वासों में महत्व पाप और पुण्य का होता है। जिस व्यवहार को आप पाप समझेंगे, उस को आप की धार्मिक

निष्ठा कैसे सह सह सकती है ?"

तप्पी बोल उठा—"सम्प्रदाय परलोक के लिये पुण्य संचय का उपयोग देते हैं परन्तु अधिक महत्व पाप न करने और न होने देने को देते हैं। प्रत्येक सम्प्रदाय अन्य सम्प्रदायों के विश्वासों और व्यवहारों को पाप समझता है। आप बताइये, साम्प्रदायिक निष्ठा पूरी करने में कोई भय न हो तो वे लड़े बिन कैसे रह सकते हैं ?"

ज़हीर ने कहा—"धार्मिक आचार की निष्ठा तो व्यक्तिगत होती है। उसमें दूसरों से लड़ने की क्या जरूरत ?"

देव ने कुर्सी पर सीधे हो कर कहा—"जरूरत होती है क्योंकि धर्म-विश्वास पाप का विरोध करना भी धर्म समझता है। आप बताइये, कितने हिन्दू गाय की पूजा करते हैं ? नगरों में गौयें गली-गली कूड़ा और मैला खाती फिरती हैं। अधिकांश हिन्दू उन्हें तृप्त करके पुण्य कमाने की चिंता नहीं करते परन्तु अफवाह फैल जाये कि अमुक मुहल्ले में गाय की कुर्बानी हो गयी है तो कितने हिन्दू चुप बैठ सकेंगे ? गाय के भूखे मर जाने से दुख नहीं होता, क्रोध इसलिये आता है कि विधर्मी ने गोहत्या का पाप कर दिया। गो पूजा का पुण्य न करने से झगड़ा नहीं होता परन्तु गो वध के पाप के विरोध के लिये अवश्य झगड़ा होगा। ऐसे ही कोई मुसलमान चाहे जुम्मे और ईद की नमाज़ के लिये मसजिद में न जाता हो परन्तु अफवाह फैल जाये कि ताजिया जला दिया गया है अथवा अमुक गिरी हुई मसजिद को हटाया जा रहा है, तो वे धर्म-युद्ध में पीछे नहीं रहेंगे ! कारण यह है कि धार्मिक आचार निबाहना न निबाहना व्यक्तिगत प्रश्न होता है। साम्प्रदायिक दृष्टि से पाप न होने देना उत्तेजना का कारण बन जाता है। ऐसा पाप या अपराध न होने देना ईश्वर द्वारा निर्धारित सामूहिक कर्त्तव्य समझा जाता है।"

तप्पी बोला—"साम्प्रदायिक विश्वासों का अस्तित्व दूसरे सम्प्रदायों के विरोध में, उसका प्रभाव न सहने में ही होता है। हम अपने सम्प्रदाय का आचर निबाहें या न निबाहें, दूसरे सम्प्रदाय के आचार-व्यवहार से अवश्य घृणा करेंगे।"

नायर ने कहा—"तुम धार्मिक विश्वासों की संकीर्णता का उदाहरण दे रहे हो। आध्यात्मिक और धार्मिक विश्वासों का मुख्य प्रयोजन मष्नुयों को निस्वार्थ और उदात्त बनाना है। धार्मिक भावनाओं की उपेक्षा करके मनुष्य का दृष्टिकोण

अति पार्थिव हो जायेगा तो वह बिल्कुल हिंसक बन जायेगा।"

भुवन ने स्वीकार किया—"आध्यात्म और धर्म-विश्वास का पारलौकिक लक्ष्य मनुष्य को निस्वार्थ और उदात्त कैसे बना सकता है ? पारलौकिक दृष्टिकोण का अर्थ ही है—'सब ठाठ धरा रह जायेगा, जब लाद चलेगा बनजारा।' बनजारे (आत्मा) को इस संसार की सुख-शान्ति से क्या मतलब ? जीवन भर पारलौकिक लोभ की बात सोचते रहना निस्वार्थ नहीं कहा जा सकता। ऐसा व्यक्ति संसार के अन्य लोगों से अपना क्या सम्बन्ध समझेगा और उनके प्रति क्यों उदात्त होगा ? वह अपना कल्याण, दूसरे लोगों के सांसारिक कल्याण में नहीं समझता। सांसारिक कल्याण की चिन्ता को तो वह भ्रम समझता है। अलबत्ता सांसारिक सफलता को लक्ष्य समझने वाला व्यक्ति यदि दूरदर्शी होगा तो अपना कल्याण सामूहिक कल्याण में समझेगा। निस्वार्थ और उदात्त होने का अर्थ सब के हित की उपेक्षा करना नहीं, अपना हित सामूहिक हित में समझना है। सांसारिक दूरदर्शिता और सामूहिक हित के लिये सांसारिक सफलता का दृष्टिकोण ही समाज में सहिष्णुता, सह-अस्तित्व और विश्व-बंधुत्व की प्रेरणा दे सकता है।"

देव बोला—"इतिहास इस बात का साक्षी है कि मनुष्य ने जब भी पार्थिव और सांसारिक लक्ष्यों के लिये संघर्ष किये हैं, उसने सांसारिक सफलता के प्रयोजन से सहयोग के लिये, पारस्परिक भेदों को दूर करने का यत्न किया है। अनेक जातियां अपने भेदों को भूल कर एक राष्ट्र और जाति बन गयीं।

"उन संघर्षों और मिश्रणों के परिणाम में मानव-समाज समृद्धि और विकास के पथ पर बढ़ा है। जब मनुष्य ने अपने-अपने ईश्वर की सत्ता फैलाने और अपने धर्मों के प्रसार के लिये युद्ध किये, धार्मिक विश्वासों का पारलौकिक दृष्टिकोण प्रधान हुआ, तब कला और संस्कृति का दमन और विनाश हुआ। कला के माध्यम, साहित्य और अपने सम्प्रदाय के अतिरिक्त अन्य सम्प्रदायों के विचार-ग्रंथों को नष्ट किया गया। सम्प्रदाय कभी एक दूसरे को सह नहीं सके। उनमें मिश्रण और सहयोग नहीं हो सका। भारत में ही नहीं, मध्य-युग में योरुप के सभी देशों में यही हुआ है। पश्चिम एशिया और सुदूर पूर्व एशिया में भी यही हुआ है। धार्मिक विश्वास इस संसार की उपेक्षा और परलोक की अपेक्षा करते हैं। ऐसे लक्ष्य समाज को शान्ति और सहिष्णुता से विकास की ओर कैसे ले जा सकते हैं ?"

नायर ने कहा—"मनुष्य ने किस युग में क्या किया, यह युग की परि-

स्थितियों, आवश्यकताओं और मनुष्य की तत्कालिक समझ पर भी निर्भर करता था परन्तु धार्मिक भावनाओं की मूल प्रेरणा सदा व्यापक हित की रही है। उन धर्मों ने मानवता के विकास के लिये विश्वास का बल दिया है।

देव ने ऊंचे स्वर में कहा—"यदि अतीत में मनुष्य ने युग की परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुसार अपनी समझ से काम लिया है, तो हम भी आज की परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुसार अपनी समझ से काम क्यों न लें ? अपनी समझ को पुराने विश्वासों से क्यों बांधें ?"

तप्पी बोला—"ध्यान देने योग्य बात है कि धार्मिक विश्वासों ने मानवता के विकास में सहयोग नहीं दिया बल्कि सदा विकास को रोकने का प्रयत्न किया है। धार्मिक विश्वास सदा विज्ञान और विकास का दमन करते रहे हैं। याद रखिये, मानव-समाज का जितना विकास हुआ है, वह सब धार्मिक विश्वासों की पराजय और पुराने विश्वासों के टुटने से हुआ है।"

तप्पी ने नायर की ओर तर्जनी उठा दी—"इस तथ्य का उत्तर दो कि हिन्दू, ईसाई और मुसलमानों की धर्म-पुस्तकों में जीव, सृष्टि और मनुष्य की उत्पत्ति और विकास के सम्बन्ध में विवरण मौजूद हैं। धार्मिक विश्वासों की दृष्टि से उन विवरणों में संदेह नहीं किया जाना चाहिये परन्तु क्या शिक्षित व्यक्ति उन विवरणों को सत्य मान सकते हैं ? तुम उन्हें सत्य मानने के लिये तैयार हो ? विज्ञान ने जब इस सम्बन्ध में तथ्यों को प्रकट किया तो धार्मिक विश्वासों ने इन्हें दबा देना चाहा। विज्ञान का पक्ष लेने वालों पर अमानुषिक अत्याचार किये गये। धार्मिक विश्वासों की सत्ता बनाये रखने और विचार-स्वातंत्र्य का दमन करने के लिये लाखों लोगों की हत्याएं की गयीं। विज्ञान का विकास धार्मिक विश्वासों और कल्पनाओं को मिथ्या प्रमाणित करके पराजित कर चुका है। तुम बताओ, यदि विज्ञान यथार्थ को जानने की प्रवृत्ति या पुराने विश्वासों से संघर्ष में पराजित हो गया होता तो तुम्हारी क्या अवस्था होती ?"

भुवन हंस पड़ा—"तो यह इस समय काफी हाउस में नहीं, किसी गुफा में बैठे होते। सड़े पत्तों की शराब भैंसे के सींग में भर कर पी रहे होते।"

तप्पी ने नायर को सम्बोधन किया—"खेद है, आज भी इस देश में धार्मिक और साम्प्रदायिक भावनायें, संसारपरक यथार्थवादी दृष्टिकोण के मार्ग में अड़चन बन रही हैं।"

भुवन ने तप्पी का समर्थन किया—"आध्यात्मिक और धार्मिक विश्वासों

का प्रयोजन ही मनुष्य के विचारों और व्यवहारों को अपने अविकसित ज्ञान से बनाये हुये विश्वास में बंधे रखना और परिवर्तन से रोकना है।"

× × ×

सुरेश ने उद्विग्नता प्रकट की—"आप राष्ट्र की प्रगति और निर्माण की बातें करते हैं, परन्तु इस राष्ट्र की जो विशेषता है, इस की सभ्यता, संस्कृति और विचारधारा है, उस की रक्षा और विकास की बात नहीं सोचते! अपनी संस्कृति को पश्चिमी भौतिक सभ्यता के प्रभावों में विलीन कर देना चाहते हैं।"

भुवन ने उत्तर दिया—"हम जरूर सोचते हैं। सभ्यता और संस्कृति मनुष्य जीवन को समर्थ, संतुष्ट और आत्म-निर्भर बनाने के लिये होती है, असमर्थ और परवश रखने के लिये नहीं। धार्मिक और साम्प्रदायिक विश्वास अपने अविकसित ज्ञान से ईश्वर का नाम लेकर, मनुष्य जीवन का लक्ष्य और व्यवहार स्वयं निश्चित कर देते हैं। मनुष्य से आत्म-निर्णय का अवसर छीन लेते हैं। वे मनुष्य की सभ्यता और संस्कृति में सभी प्रकार के परिवर्तनों और विकास का विरोध करते हैं।"

जहीर ने आपत्ति की—"सभ्यता और संस्कृति का सम्बन्ध मुख्यता मनुष्य के विचारों, व्यवहारों और मानसिक संतुलन से होता है। धार्मिक विश्वास मनुष्य की सभ्यता और संस्कृति की आत्मा होते हैं। धार्मिक विचार धाराएं ही मनुष्य को भय और लोभ से मुक्त कर, समाज को मनोबल, सुव्यवस्था और संतुलन देती हैं।"

भुवन ने उत्तर दिया—"भय और लोभ से मुक्ति के लिये आध्यात्मिक और धार्मिक विश्वासों का भरोसा किया जाता है परन्तु यह आत्म-प्रवंचना है। मानव-विज्ञान के अनुसार आध्यात्म और धर्म, आदिम मनुष्य का ऐसे भय और शक्तियों से आत्म-रक्षा का प्रयत्न था जिन्हें वे समझ नहीं सकते थे। मनुष्य भय से बचने के लिये और अपने प्रयत्नों में सफलता के लिये, अज्ञात शक्तियों की कल्पना करके उन से याचना और उन की पूजा किया करता था। यही आध्यात्म और धर्म का आदिम रूप था। आदिमवासियों में आध्यात्म और धर्म आज भी इसी रूप में मौजूद हैं।"

देव ने भुवन को टोक कर जहीर से पूछा—"आदिम अवस्था में पायी जाने

वाली जातियों में और शेष सभ्य समाज में अन्तर तो बहुत दिखायी देता है परन्तु वह अन्तर है क्या ?"

ज़हीर ने उत्तर दिया—"अन्तर सभ्यता का है, और क्या है ?"

देव ने आगे झुक कर कहा—"सभ्यता शब्द से अभिप्राय क्या है ? किसी समाज की सभ्यता का परिचय उसके आध्यात्मिक और धार्मिक विश्वास नहीं दे सकते । आदिम अवस्था में रहने वाले लोग भी अपने आध्यात्मिक और धार्मिक विश्वासों से सन्तुष्ट रहते हैं और उन्हें पूर्ण समझते हैं । सभ्यता का विकास और स्थिति, भौतिक और पार्थिव साधनों से ही आंकी जा सकती है ।"

भुवन ने भी ज़हीर को सम्बोधन किया—"सभ्यता और संस्कृति का रूप धार्मिक विश्वासों से प्रभावित नहीं होता । विपरीत इसके सभ्यता और संस्कृति धार्मिक विश्वासों और व्यवहारों को प्रभावित करते हैं ।

देव ने समर्थन किया—"बिलकुल ठीक, ज्यों-ज्यों जातियां और समाज अपने अनुभवों के आधार पर अपने विश्वासों को बदल कर, अपनी पार्थिव शक्ति और सभ्यता को बढ़ाते जाते हैं, उनके आध्यात्मिक और धार्मिक विश्वास भी बदलते जाते हैं । आध्यात्म और धार्मिक विश्वास अज्ञात शक्तियों के भय और कृपा के लोभ से उत्पन्न हुये हैं और उनके अस्तित्व का आधार भी अज्ञात और परलोक के भय और लोभ होते हैं । स्वयं भय और लोभ से उत्पन्न विचार भय और लोभ को कैसे मिटा सकते हैं ? भय और लोभ से मुक्ति, विज्ञान के विकास द्वारा मनुष्य का अज्ञान दूर होने, सामर्थ्य बढ़ने और सांसारिक हित के लिये सामाजिक सुव्यवस्था से ही मिल सकती है ।"

तप्पी ने पूछा—"आप किस व्यक्ति और समाज को नैतिक और उन्नत मानियेगा ? भय और लोभ से नैतिकता का अनुसरण करने वाले को अथवा सामाजिक हित और आत्माभिमान की भावना से नीति का अनुसरण करने वाले को ?"

देव ने सुरेश और ज़हीर की ओर देखा—"यह साधारण अनुभव है कि ज्यों-ज्यों विज्ञान के विकास से मनुष्य यथार्थ का परिचय पाता है, उसकी सभ्यता और संस्कृति का विकास होता है, आत्म-निर्भरता का विश्वास बढ़ता है । उसे व्यवस्था और नीति के मार्ग पर रखने के लिये अलौकिक शक्ति के भय और कृपा की आवश्यकता नहीं रहती । ऐसा सक्यूलर समाज इस संसार के हित के दृष्टिकोण से नीति का अनुसरण करने वाला होता है ।

सुरेश ने खिन्नता से कहा—"सक्यूलर या सांसारिक दृष्टिकोण इन्द्रिय तृप्ति और भोग की लालसा को बढ़ायेगा। ऐसी प्रवृत्ति से समाज में स्वार्थों का संघर्ष और हिंसा ही बढ़ेगी। उस प्रवृत्ति में निस्वार्थ, सहिष्णुता और विश्व-बन्धुत्व की भावना के लिये क्या प्रेरणा हो सकती है?"

देव ने विस्मय प्रकट किया—"नैतिकता, निस्वार्थ, सहिष्णुता और विश्व-बन्धुत्व की भावना का आत्मा और पारलौकिक लक्ष्यों से क्या सम्बन्ध हो सकता है?"

सुरेश और ज़हीर ने भी एक स्वर में विस्मय प्रकट किया—"आपके विचार में नैतिकता, सांसारिक लोभ और व्यक्तिगत स्वार्थों के संघर्ष से उत्पन्न होती है?"

भुवन ने हामी भरी—"अवश्य! नैतिकता, भौतिक और पार्थिव दृष्टिकोण से उत्पन्न होती है। उसका विकास समाज में व्यक्तियों और समूहों को, जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये अधिक से अधिक अवसर देने के लिये होता है। नैतिकता का आध्यात्म और परलोक से कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता है। आध्यात्मिक और पारलौकिक लक्ष्यों में कोई किसी का साझीदार नहीं हो सकता। नैतिकता इस संसार के पारस्परिक व्यवहारों की मान्यता होती है। समाज में सांसारिक सफलता और व्यवस्था की चिन्ता ही नैतिकता को विकसित कर सकती है।"

देव बोल पड़ा—"आप मानते हैं कि पश्चिम की अपेक्षा हमारे देश में आध्यात्मिक और पारलौकिक प्रवृत्ति और चिन्तन कहीं अधिक हैं परन्तु पश्चिम में अपने और दूसरे व्यक्तियों के अधिकारों और हितों की चेतना, सामाजिक विनय और शील, हमारे देश की अपेक्षा कहीं अधिक हैं। वहां दूसरों के अधिकार और सम्मान का विचार रहता है। लोग प्रत्येक अवसर पर दूसरों की और अपनी सुविधा के विचार से स्वयं ही क्यू बना लेंगे। रेलगाड़ी या बस में स्थान न होने पर मुसाफिरों को भीतर आने से नहीं रोकेंगे। हमारे यहां सार्वजनिक सम्पत्ति, सार्वजनिक स्थान अथवा दूसरे व्यक्तियों के मकानों के सामने लगे फल-फूल सुरक्षित नहीं रहते। योरुप में दूसरों को ऐसी हानि कोई नहीं पहुंचाता। उन्हें पाप का पारलौकिक भय नहीं होता, केवल सामाजिक सुव्यवस्था और आत्म-सम्मान का विचार होता है।"

ज़हीर ने अस्वीकार किया—"उस भेद का कारण हमारे समाज में नैतिक बल की कमी नहीं, सामाजिक व्यवहार की शिक्षा और चेतना की कमी है।"

तप्पी हंस दिया—"सामाजिक व्यवहार की शिक्षा और चेतना ही तो नैतिकता होती है, जिस की हमारे यहां उपेक्षा है। आध्यात्मिक शिक्षा की हमारे यहां कमी नहीं है। कोई अशिक्षित व्यक्ति भी आप को बता देगा—यह संसार अनित्य है, साथ कोई नहीं जायगा, निर्मोह रहो। ऐसी आध्यात्मिक शिक्षा हमें क्या नैतिक बल देती है? आप नैतिक बल को सक्यूलर चेतना कहेंगे या आध्यात्मिक और पारलौकिक चेतना?"

देव ने आगे बढ़ कर पूछा—"अनेक परस्पर-विरोधी धार्मिक विश्वास होते हुये भी एक सर्वमान्य व्यवहारिक नैतिकता की आवश्यकता है या नहीं? आप नास्तिकों से भी नैतिक व्यवहार की आशा करेंगे या नहीं और उस नैतिकता को सक्यूलर कहेंगे या नहीं···?"

भुवन निर्णय के ऊंचे स्वर में बोला—"मानव विज्ञान के अनुसार धार्मिक विश्वास, नैतिक धारणाओं को सामाजिक आवश्यकताओं और अनुभवों से अपनाते हैं। धार्मिक विश्वास नैतिक धारणाओं को उत्पन्न नहीं करते।"

ज़हीर जोर से हंसा—"आप का मानव विज्ञान प्रत्यक्ष बात से इनकार करता है। आप कहना चाहते हैं—अण्डे से मुर्गी पैदा होती है, मुर्गी से अण्डा नहीं पैदा होता। नैतिक धारणा और धार्मिक विश्वास में अंतर ही क्या है?"

भुवन मुस्कराया—"आप हंस लें तो मैं उत्तर दूं!" और बोला, "आप समझते हैं नैतिक धारणायें, आध्यात्मिक और धार्मिक भावनाओं से उत्पन्न होती हैं। आप किसी घटना से राबिसन क्रूसो की तरह ऐसे द्वीप में पहुंच जायं जहां कोई दूसरा व्यक्ति न हो। आप को आध्यात्म चिंतन का तो पूरा अवसर होगा परन्तु आप के व्यवहार में नैतिकता का क्या प्रश्न हो सकेगा? नैतिक व्यवहार की आवश्यकता और अवसर केवल अन्य व्यक्तियों से सम्पर्क में आने पर और सांसारिक वस्तुओं के सम्बन्ध में ही हो सकता है, इसलिये नैतिकता नितांत रूप से केवल मानुषिक और सांसारिक नियम है। धार्मिक विश्वास अपने समाज में सुव्यवस्था के लिये नैतिकता को महत्व देते हैं, उस का उपयोग भी करते हैं परन्तु उसे जन्म नहीं देते, न उस का विकास करते हैं। नैतिकता का जन्म सक्यूलर, लोकपरक सुव्यवस्था और सफलता की आवश्यकताओं से होता है। नैतिकता का लक्ष्य आध्यात्म और पारलौकिक नहीं होता, समाज के सब व्यक्तियों और समूहों को जीवन का अधिक से अधिक और समान अवसर देना होता है। जिस समाज में दूसरों के वैयक्तिक अधिकारों और हितों तथा समाज

की सुव्यवस्था की उपेक्षा की जाती है और आध्यात्मिक और पारलौकिक चिंतन से व्यक्तिगत जीवन ऊंचा उठाने का और नैतिक होने का विश्वास किया जाता है, उस समाज में व्यवहारिक नैतिकता शिथिल हो जाती है। हमारा समाज उस का उदाहरण है। हमारे संविधान को सक्यूलर मान लेना ही पर्याप्त नहीं, समाज के व्यक्तियों का दृष्टिकोण भी सक्यूलर अथवा लोकपरक होना चाहिये।"

जहीर ने कहा—"सामाजिक उत्तरदायित्व की चेतना होनी चाहिये, इस से तो कोई इनकार नहीं करता। धार्मिक भावनायें सामाजिक चेतना में क्या बाधा डालती हैं? धार्मिक भावना से सहयोग और संगठन पर आप को क्या आपत्ति है?"

देव बोला—"हमें आपत्ति है। अनेक धर्म-विश्वासों और सम्प्रदायों के पृथक पृथक संगठनों की प्रवृत्ति और उन पर भरोसा हमारी राष्ट्रीय भावना और सामूहिक तथा सांसारिक प्रगति के प्रयत्नों को निर्बल कर देता है। आध्यात्मिक और पारलौकिक कल्पनाओं से संतुष्ट और नैतिक हो जाने के विश्वास से सामाजिक, सांसारिक हित और उत्तरदायित्व की उपेक्षा जरूर होती है।"

नायर ने विरोध किया—"यह तो जरूरी नहीं है।"

तप्पी ने ऊंचे स्वर में कहा—"जरूरी है। हम नित्य यही बात देखते हैं। इस देश के लोगों को ईश्वर के प्रति दायित्व, स्वर्ग और मोक्ष की चिंता अधिक है, अपने और अपने पड़ोसियों के सम्मान, अधिकारों और हितों की चिंता कम है। कीर्तन में मंजीरे और ढोलक बजा कर भगवान को पुकारने के लिये, वाज़-मिलाद में अल्लाह को याद करने के लिये सैकड़ों आदमी इकट्ठा हो जायेंगे। धार्मिक काम में सहयोग लेने के लिये सब को उत्साह होगा परन्तु गली में गन्दगी सड़ती रहे, बाजार की नालियां गंधाती रहें, खाद्य पदार्थों में अस्वास्थ्यकर मिलावट होती रहे; नगर, कस्बे और मुहल्ले में बीमारी फैल जाने की आशंका हो जाये तो उस की चिंता और उपाय के लिये सहयोग का उत्साह किसी में नहीं होगा।"

देव ने पूछा—"जीवन का लक्ष्य इस संसार में स्वास्थ्य, सामर्थ्य और संतोष न मान कर आध्यात्मिक और पारलौकिक समझ लेने का परिणाम आप को दिखाई नहीं देता। जब भी किसी सार्वजनिक कार्य के लिये, स्वास्थ्य-चिकित्सा की सुविधायें जनता को देने के लिये, शिक्षा प्रसार के लिये सड़कों, और बिजली का विकास करने के लिये सरकार की ओर से कोई कर लगाया

जाता है तो त्राहि-त्राहि मच जाती है। ऐसे कर से बचने के लिये धांधली करने में कोई लज्जा अनुभव नहीं करता। लोग ऐसी धांधली को जान कर भी उस की भर्त्सना नहीं करते। सब अपने आप को निर्द्वन्द्व समझते हैं। यदि इन कामों में जनता की रुचि हो, जनता इसे अपना काम समझे, इनमें अपना लाभ समझे तो ऐसे करों को अत्याचार नहीं समझेगी ?"

सुरेश बोल पड़ा—"आप बड़े राजभक्त हैं, क्या आप टैक्सों कों अभी और बढ़वाना चाहते हैं ?"

देव ने कहा—"टैक्स बढ़वाना कौन चाहते हैं ? प्रश्न सांसारिक हित और पारलौकिक विश्वासों के सम्बन्ध में जनता के दृष्टिकोण और व्यवहार का है। आप किसी भी इनकमटैक्स के इंस्पेक्टर, इनकमटैक्स के वकील से पूछ लीजिये कि टैक्स न देने के लिये क्या-क्या कानूनी प्रपंच गढ़े जाते हैं। हमें प्रत्येक सरकारी कर बुरा लगता है परन्तु सार्वजनिक कार्यों के लिये लगाये गये करों के बोझ से हाहाकार करने वाले लोग, सरकारी कर की रकम से दुगनी-तिगुनी रकम बहुत प्रसन्नता से परलोक-लाभ के लिये साम्प्रदायिक कार्यों में दे देते हैं। मुहल्ले में कीर्तन, रामायण की कथा, मिलाद और वाज़ कराने के लिये जब चाहें आप चन्दा उगाह सकते हैं। ऐसे कामों में चन्दा न दें तो आपको जनता के सामने लज्जित होना पड़ेगा परन्तु मुहल्ले में स्वास्थ्य, शिक्षा व अन्य सुविधाओं के लिये न किसी को कुछ करने का ध्यान आयेगा, न कोई चन्दा देगा, न कोई सार्वजनिक चोरी के विरुद्ध आवाज़ उठायेगा। यदि धार्मिक विश्वास से पार-लौकिक लाभ के लिये व्यय की जाने वाली शक्ति और धन, जनता के स्वास्थ्य और शिक्षा में खर्च हो रहा होता तो हमारी क्या अवस्था होती ?"

ज़हीर ने कहा—"धार्मिक विश्वास के लिये दिया गया धन व्यक्ति को कितना संतोष देता है। इसे धब नष्ट किया जाना नहीं कहा जा सकता।"

तप्पी बोला—"क्यों नहीं कहा जा सकता। हिन्दू के पारलौकिक दृष्टिकोण को आप इस्लाम और ईसाइयत के विश्वासों के दृष्टिकोण से देखिये ! इस्लाम के पारलौकिक अनुष्ठान को हिन्दू और ईसाई धार्मिक संस्कारों की दृष्टि से देखिये। अन्य सम्प्रदायों का बहुमत प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान को अंध-विश्वास कहेगा। क्या बहुमत का कुछ मूल्य ही नहीं ? व्यक्तिगत धार्मिक अंध-विश्वास का बहुत मूल्य है ?"

भुवन हंस पड़ा—"धर्म-भीरु लोगों को तो बाजारों और तीर्थस्थानों से

भिखमंगों को हटा दिया जाना भी बुरा लग सकता है। इससे राह चलते-चलते पुण्य कमा सुकने का अवसर नहीं रहता। कुछ परलोककामी धर्मात्मा तो इस प्रतीक्षा में रह सकते हैं कि कोई गरीब बेकफ़न मरे तो वे उसे कफ़न देकर पुण्य कमा सकें। इस जीवन को जैसे-तैसे काट कर परलोक कमा लेने की हमारी भावना, हमारे राष्ट्र को क्षय रोग की तरह सब ओर से खा रही है।"

सुरेश ने कहा—"हमारे देश और समाज में अधिकांश जनता के लिये सांसारिक संतोष का अवसर है ही नहीं, धार्मिक विश्वास उन्हें संतोष का सहारा देकर संतुलन बनाये हैं। क्या आप उसे भी समाप्त करके उनका जीवन असह्य बना देना चाहते हैं ?"

तप्पी ने प्रश्न किया—"धार्मिक विश्वास हमारे समाज के वैयक्तिक और सामाजिक जीवन में क्या संतुलन बनाये हैं; किस प्रकार सहायक हो रहे हैं ! क्या हमारे समाज के लोग, व्यक्तिगत रूप से कदम-कदम पर अभाव और आर्थिक कठिनाइयां अनुभव नहीं कर रहे हैं ? इन कठिनइयों का प्रभाव उनके स्वास्थ्य और नैतिकता पर नहीं पड़ रहा है ? क्या वे सन्तुष्ट हैं ?"

भुवन ने कहा—"धार्मिक भावनाओं के प्रभाव से समाज में किसी भी स्तर के लोग संतोष नहीं पा रहे हैं। उत्पादन के साधनों के मालिक लोग जिनकी आर्थिक अवस्था अच्छी है, इस संसार को भ्रम मान कर अपनी स्थिति से संतुष्ट नहीं है। उन्होंने राष्ट्रीय स्वतन्त्रता से लाभ उठाया है। वे अपनी आर्थिक शक्ति को बढ़ाते चले जा रहे हैं। देश में आर्थिक विषमता बढ़ती जा रही है। धार्मिक विश्वास अधिकांश अ निम्न-मध्यम श्रेणी के लोगों को उलझाये हुये हैं। वे अपनी सामूहिक शक्ति को, अपनी सांसारिक परिस्थितियां और अवस्था सुधारने में न लगाकर, धर्म-विश्वासों के संघर्षों सौर रूढ़ियों की रक्षा में खपाये दे रहे हैं। वे अपना सम्बन्ध देश की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक समस्याओं से न समझ कर केवल धर्मोपचार और रूढ़ियों की रक्षा से ही समझते हैं।"

देव ने कहा—"आध्यात्मिक और धार्मिक विश्वासों से हमारे समाज में क्या संतुलन हो रहा है ? हमारे देश में किसी भी प्रश्न पर साम्प्रदायिक झगड़े हो सकते हैं। हमारी जनता चुनाव के समय राजनीतिक, आर्थिक और भाषा के सम्बन्धों को नहीं, साम्प्रदायिक सम्बन्धों को ही महत्व देती है। एक ही बोली बोलने वाले लोग साम्प्रदायिक भावना से अपनी-अपनी भाषायें अलग बताते

हैं। साम्प्रदायिकता पृथकता की भावना को इतना बढ़ा देती है कि एक ही भाषा-भाषियों में पृथक साम्प्रदायिक राज्यों की मांगें उठने लगती हैं। साम्प्रदायिक भावनायें हमें सन्तुलन नहीं दे रहीं, हमारी राष्ट्रीय भावना में अड़चन बन रही हैं। हमने संविधान में अपने राष्ट्र की व्यवस्था सेक्यूलर, लोकपरक अथवा धर्म-निरपेक्ष स्वीकार की है परन्तु हम जनता का दृष्टिकोण लोकपरक नहीं बना सके। उसी का परिणाम भोग रहे हैं।"

सुरेश ने पूछा—"राष्ट्र को सेक्यूलर या लोकपरक कहकर आप जनता से आध्यात्मिक और धार्मिक विश्वासों की स्वतंत्रता छीन लेना चाहते हैं!"

ज़हीर ने चेतावनी दी—"प्रजातंत्र का आधार व्यक्तिगत स्वतंत्रता है। आध्यात्मिक और धार्मिक विश्वासों की स्वतंत्रता, व्यक्तिगत स्वतंत्रता का महत्वपूर्ण अंग है।"

तप्पी हंस पड़ा—"धार्मिक विश्वासों को चरम सीमा तक निबाह सकने के लिये काफ़िरों और म्लेच्छों को निर्मूल करने की स्वतंत्रता भी आवश्यक है।"

ज़हीर ने आपत्ति की—"यह तर्क नहीं, कुतर्क है। ऐसी स्वतंत्रता कौन मांग रहा है?"

देव बोला—"कुतर्क नहीं है, यह तर्क-संगत कल्पना और सम्भावना है।" उसने सुरेश और ज़हीर की ओर तर्जनी उठायी, "आप इन्कार नहीं कर सकते। हमारे देश में साम्प्रदायिक भावनायें हैं, साम्प्रदायिक राजनीतिक दल भी हैं। सब साम्प्रदायिक दल अपनी-अपनी राजनीतिक शक्ति बढ़ाने का यत्न कर रहे हैं। कोई भी सम्प्रदाय शासन की शक्ति पाकर शासन व्यवस्था को अपने धार्मिक विश्वासों के प्रसार का साधन बनाकर, देश में दूसरे लोगों का जीवन असम्भव कर देगा। उदाहरण पड़ोसी राज्य में देख लीजिये!"

ज़हीर ने टोक दिया—"क्या शेखचिल्लियों के सपने देख रहे हो! क्या सभ्यता के इस युग में साम्प्रदायिक राज्यों की कल्पना की जा सकती है?"

देव ने कहा—"करनी नहीं चाहिये परन्तु राजनीतिक और आर्थिक स्वार्थों को पूरा करने के लिये धार्मिक उन्माद को साधन बनाया जा सकता है। आप को साम्प्रदायिक राज्य की कल्पना शेखचिल्ली का स्वप्न जान पड़ती है लेकिन आपके देखते-देखते पाकिस्तान बना है, सिक्खिस्तान की मांग क्रिप्स कमीशन के सामने की जा चुकी है और पंजाबी सूबे के लिये आन्दोलन हो चुका है। इस अनुभव से अन्ध-विश्वासों, साम्प्रदायिक संगठनों के राष्ट्रघाती प्रभाव को

दूर करना आवश्यक है।"

ज़हीर बोला—"हमारे यहां ऐसी आशंका नहीं है। आप व्यर्थ आशंका में जनता की धार्मिक भावनाओं और विचार स्वतंत्रता का दमन करना चाहते हैं।"

देव ने प्रश्न किया—"आप मनुष्य को विचारों की स्वतंत्रता देना चाहते हैं या धार्मिक विश्वासों को जनता के विचारों के दमन की स्वतंत्रता देना चाहते हैं?"

ज़हीर ने आपत्ति की—"धार्मिक विश्वासों की स्वतंत्रता और विचार स्वतंत्रता समानार्थक हैं। धार्मिक विश्वासों की स्वतंत्रता को विचार स्वातंत्र्य का दमन कैसे कहा जा सकता है? स्वतंत्रता, स्वतंत्रता का दमन कैसे कर सकती है?"

तप्पी हंस पड़ा—"वाह क्यों नहीं, सशस्त्र व्यक्ति की स्वतंत्रता निःशस्त्र जनता की स्वतंत्रता का दमन करेगी। ठगी करने वालों की स्वतंत्रता ईमानदार जनता की स्वतंत्रता का दमन करेगी।"

देव तप्पी को सुनने का संकेत कर बोला—"धार्मिक विश्वासों की सत्ता और विचार स्वतंत्रता मूलतः परस्पर-विरोधी वस्तुयें हैं। धार्मिक स्वतंत्रता का अर्थ है—अपने विचारों पर धार्मिक विश्वासों के बन्धन स्वीकार करना, दूसरों को ऐसे विश्वासों के बन्धन स्वीकार करने की प्रेरणा देना और उस प्रयोजन से धार्मिक संगठन बना सकना। धार्मिक विचारों की स्वतंत्रता छीनने की बात कोई नहीं कहता। हम तो देश के मनुष्यों के हित और विकास के लिये विचारों की स्वतंत्रता का वातावरण चाहते हैं।"

सुरेश ने विरोध किया—"क्या विचार स्वतंत्रता के नाम पर विश्वासों और धार्मिक विश्वासों की स्वतंत्रता छीन लेना चाहते हैं? धार्मिक विश्वास भी तो विचार हैं! आप हमें नास्तिकों की डिक्टेटरशिप में पशु बना देना चाहते हैं?"

भुवन ने सुरेश को सुनने के लिये संकेत कर कहा—"विचारों और विश्वासों की स्वतंत्रता के नारों का अर्थ क्या है? आप मिथ्या विश्वासों की अथवा असामाजिक और जनद्रोही विचारों की स्वतंत्रता के लिये भी नारे लगाने को तैयार हो जायेंगे?" भुवन का स्वर ऊंचा हो गया, "यदि कोई सती प्रथा के प्रचार का नारा लगाना चाहें तो?"

ज़हीर ने भी ऊंचे स्वर में उत्तर दिया—"तुम तो फिर शेखचिल्ली जैसी बातें करते हो। यह कोई तर्क नहीं है।"

भुवन फिर ऊंचे स्वर में बोला—"यह बात शेखचिल्ली जैसी है! आप ने

खुद बताया था, पिछले साल मुहर्रम के मेले में गंदा जल पीने से हैज़ा फैला था। आप के मौलवियों ने उस का कारण, ताजियों को ट्रक पर ले जाने के धर्म-विरोधी कार्य के लिये ईश्वरीय दण्ड बताया है। इस देश में लोग धार्मिक विश्वास के कारण चेचक और हैजे के टीके लगवाने में देवी-देवताओं की अप्रसन्नता की आशंका समझते हैं। परीक्षा और इन्टरव्यू में सफलता के लिये हनुमान जी पर भरोसा करना चाहते हैं। क्या आप ऐसे धार्मिक विश्वासों के प्रचार की और उन में आस्था रखने की स्वतन्त्रता को समाज के लिये हितकर समझते हैं ? धार्मिक विश्वासों और अन्ध-विश्वासों में भेद की कसौटी विश्वासों को नहीं, तर्क और विज्ञान को ही मानना पड़ेगा। क्या विचारों की वास्तविक स्वतन्त्रता के लिये आप मिथ्या-विश्वासों से जनता की मुक्ति आवश्यक नहीं समझते ?"

तप्पी भुवन को रोक कर बोला—"यह चाहते हैं, सत्ता और शासन सेक्यूलर रहे, किसी भी सम्प्रदाय के हाथ में नहीं रहे। सब सम्प्रदायों को अपनी-अपनी धार्मिक भावनाओं से संगठित होकर लड़ते रहने की समान स्वतंत्रता रहे। लेकिन यदि कोई सम्प्रदाय शासन अपने हाथ में ले लेने में सफल हो जाये तो उसे संविधान को बदलने से कौन रोक सकेगा ? राष्ट्र साम्प्रदायिक बन जायेगा। जनता की मन:स्थिति और राष्ट्र के कानून में कितना बड़ा अन्तरविरोध है—राष्ट्र का संविधान और शासन सेक्यूलर हो परन्तु जनता की भावनायें साम्प्रदायिक हों।"

भुवन ने कहा—"जनता की भावनायें साम्प्रदायिक हैं, जनता प्रत्येक प्रश्न पर साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से विचार और व्यवहार करती है। यदि शासन की नीति और व्यवहार धर्म-निरपेक्ष रहे तो शासन को जनता का सहयोग कैसे मिल सकता है ? शासन जनता की जो कुछ सांसारिक भलाई करना चाहे, वह जनता के असहयोग और उपेक्षा के बावजूद करनी होगी।"

देव ने पूछ लिया—"सरकार और जनता में सहयोग किस आधार पर हो सकता है ? जनता स्वर्ग, बहिश्त और मोक्ष पा लेने की जल्दी में है, सरकार जनता को जल्दी वहां जाने नहीं देना चाहती।"

तप्पी बोला—"हमारे देश में शासन करने वालों को जनता चुनती है। जनता में अभी तक अपना व्यक्तिगत हित सामाजिक हित में समझने की और उस हित को सामूहिक चेतना और सुव्यवस्था से पूरा कर सकने की भावना

नहीं जागी है । जनता व्यवस्था में व्यक्ति के स्थान और उत्तरदायित्व को नहीं समझती है । चुनाव के समय सर्व-साधारण सामूहिक हित और उत्तरदायित्व के विचार से काम न लेकर व्यक्तिगत, संकीर्ण बिरादरी-जाति के सम्बन्धों और साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से विचार करते हैं । ऐसी अवस्था में निष्पक्ष सामूहिक हित और लोकपरक नीति को कैसे बल मिल सकता है ? हमारी समस्यायें धार्मिक और पारलौकिक नहीं, सांसारिक हैं । हमें उत्पादन बढ़ाना है । उत्पादन के वितरण की न्यायपूर्ण सुव्यवस्था करनी है, शिक्षा और स्वास्थ्य की सुविधायें सुलभ करनी हैं । निष्पक्ष, न्यायपूर्ण सामाजिक सुव्यवस्था कायम करनी है । इन प्रश्नों पर साम्प्रदायिक विश्वासों का क्या प्रभाव पड़ सकता है ? व्यक्तिगत रूप से जो चाहे जैसी आध्यात्मिक साधना करे और धार्मिक आचार निबाहे लेकिन समाज में साम्प्रदायिक संगठनों की क्या उपयोगिता है ?"

भुवन बोला—"हमारी जनता शताब्दियों तक आर्थिक और राजनीतिक पराधीनता में पिसती रही है । सांसारिक संतोष के लिये यत्न की स्वतंत्रता और अवसर हमें नहीं था इसलिये हमने पारलौकिक सुख की कल्पना का भरोसा करना सीख लिया था । वह कल्पना हमारे दृष्टिकोण को धार्मिक विश्वासों और साम्प्रदायिकता में सीमित रखती थी । अब हम राजनीतिक रूप से स्वतंत्र हैं । प्रजातंत्र व्यवस्था में जनता को आत्म-निर्णय का, अपना भविष्य और भाग्य स्वयं बना सकने का अवसर है परन्तु हम पुराने अभ्यासों और संस्कारों को छोड़ नहीं पाये । हमारा जनसमूह अब भी सांसारिक जीवन और राष्ट्र के हित के दृष्टिकोण से नहीं, साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से ही सोचता है । हमारा दृष्टिकोण सेक्यूलर या लोकपरक नहीं हो पाया । हम मनुष्य नहीं, हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई बने हुये हैं । यदि हम मनुष्य बन जायें तो साम्प्रदायिक प्रश्न अपने आप समाप्त हो जायेंगे ।"

देव दो बार विदेश हो आया है, बोला—"हमारे यहां ही नहीं, साम्प्रदायिक दृष्टिकोण मध्य एशिया, रूस, रूमानिया, अल्बानिया, यूगोस्लाविया आदि देशों में राष्ट्रीय और सामाजिक रोग था । उन राष्ट्रों में दृष्टिकोण सेक्यूलर या लोकपरक हो जाने से ऐसी समस्यायें समाप्त हो गयी हैं । अब वे लोग पारलौकिक चिंता में इस लोक की उपेक्षा नहीं करते । ईश्वर के आदेशों को पूरा करने के बजाय परिस्थितियों के अनुसार राजनीतिक सूझ-बूझ से, परस्पर सहयोग से इस संसार को ही स्वर्ग बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं ।"

भुवन ने कहा—"धार्मिक स्वतन्त्रता तो हमें विदेशी शासन के समय भी थी। उस का फल राष्ट्र में परस्पर अविश्वास और असहयोग की भावना बढ़ना ही हुआ। धार्मिक स्वतन्त्रता हमारी सांसारिक सामर्थ्य बढ़ाने में उपयोगी नहीं हो सकी। अब जनता को राजनीतिक स्वतन्त्रता मिल गयी है परन्तु जनता पुराने अभ्यासों के कारण उस के उपयोग में रुचि नहीं ले रही। जनता न तो व्यवस्था के निर्माण में, न व्यवस्था के संचालन में वैयक्तिक उत्तरदायित्व से सहयोग देती है। जब भी राजनीतिक अधिकार के उपयोग का अवसर आता है, साम्प्रदायिक भावना सामने आ जाती है।"

ज़हीर खिन्न हो गया—"आप तो फासिस्ट हैं। राष्ट्र-निर्माण के नाम पर विचारों की स्वतंत्रता को समाप्त कर देना चाहते हैं।"

देव ने उचक कर कहा—"आप फैसिज्म या तानाशाही को बुरा समझते हैं तो सब से पहले धार्मिक विश्वासों की तानाशाही सत्ता को दूर कीजिये। वैयक्तिक स्वतन्त्रता और विचार स्वतन्त्रता का दमन धार्मिक विश्वासों की सत्ता से अधिक कोई दूसरी शक्ति नहीं कर सकती। मनुष्य को वैयक्तिक और सामाजिक अनुभवों और तर्क के आधार पर विचार न करने देने से भयंकर दमन और क्या हो सकता है? अलौकिक सत्ता और धार्मिक विश्वासों की शिक्षा का अर्थ विचारों की स्वतंत्रता उत्पन्न न होने देना है। आप यदि वास्तव में जनता को वैयक्तिक और विचारों की स्वतंत्रता देना चाहते हैं तो जनता में धार्मिक विश्वासों की शिक्षा के बजाय तर्क और परख के वैज्ञानिक दृष्टिकोण को प्रोत्साहित करना चाहिये। धार्मिक विश्वास और विचार स्वातंत्र्य परस्पर विरोधी प्रवृत्तियां हैं।"

तप्पी ने कहा—"धार्मिक विश्वास रखने की व्यक्तिगत स्वतंत्रता में हस्ताक्षेप करने के लिये कोई नहीं कहता परन्तु साम्प्रदायिक दृष्टिकोण को सार्वजनिक जीवन में प्रोत्साहित करना अवश्य हानिकारक है। जब व्यक्ति दूसरों को साम्प्रदायिक भावना से अपने और पराये समझने लगते हैं; उदाहरणतः मुहल्ले सम्प्रदायों में बटने लगते हैं या एक सम्प्रदाय के लोग दूसरे सम्प्रदाय की दूकानों का बायकाट करने लगते हैं तो व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन विशृंखलित और आतंकित हुये बिना कैसे रह सकता है! ऐसी विरोधी भावनाओं को समाप्त हो जाना चाहिये या वे विकट रूप ले लेंगी।"

देव बोला—"आप मुहल्लों की बात कर रहे हैं। साम्प्रदायिक दंगे के समय

प्रत्येक परिवार को अपने बच्चों पर संकट अनुभव होने लगता है परन्तु संकट के बीज वह स्वयं ही बोते हैं। बचपन से ही हमें सिखाया जाता है कि दूसरे सम्प्रदाय हमारे शत्रु हैं, हमें उनसे कोई सम्पर्क नहीं रखना है। हमारी और उनकी लड़ाई स्वाभाविक है। इस पर हम यह चाहते हैं कि साम्प्रदायिक दंगे न हों। हम यह नहीं सोचते कि अमुक व्यक्ति से हमें या समाज को क्या सहायता और सहयोग मिल सकता है ? हमारे मन में यही चेतना बनी रहती है कि वह स्वर्ग में जाने वाली बिरादरी में से है या बहिश्त में जाने वाली बिरादरी में से। हालांकि वहां जाना अकेले ही पड़ेगा।"

तप्पी ने कहा—"दुर्भाग्य यह है कि हमारे देश के राजनीतिक दल भी जनता का दृष्टिकोण संसारपरक और यथार्थवादी बनाने का यत्न नहीं करते। चुनाव के समय जनता के सामने राजनीतिक, आर्थिक और शासन व्यवस्था में सुधार के प्रश्न जाने चाहिये परन्तु उस समय राजनीतिक दल साम्प्रदायिक भावनाओं से लाभ उठाने के लिये अराष्ट्रीय साम्प्रदायिक मांगों का समर्थन करने लगते हैं। अपने आपको धर्म-निरपेक्ष कहने वाले राजनीतिक दल भी क्षणिक लाभ के लिये साम्प्रदायिक भावना से पृथक भाषा, पृथक साम्प्रदायिक शिक्षा और पृथक प्रदेशों की मांग का समर्थन करने लगते हैं। वे यह नहीं सोचते कि साम्प्रदायिक भावनायें बढ़ेंगी तो राष्ट्र पृथक साम्प्रदायिक शिविरों में बंट कर रहेगा। सब लोग अपने-अपने साम्प्रदायिक शिविरों में चले जायेंगे तो उनकी धर्म-निरपेक्ष नीति का साथ कौन देगा ?"

भुवन ने खेद प्रकट किया—"हमारे देश की राजनीति में यह कितना बड़ा अन्तर्विरोध है। सरकार और देश के सभी मुख्य राजनीतिक दल—कांग्रेस, प्रजा सोशलिस्ट पार्टी, जनसंघ, कम्युनिस्ट, स्वतंत्र पार्टी, अपने आपको सेक्यूलर, धर्म-निरपेक्ष कहते हैं परन्तु साम्प्रदायिक प्रवृत्तियों और भावनाओं को दूर करने का यत्न कोई नहीं करता। हमारे राजनीतिक क्षेत्र में अब भी ब्रिटिश सरकार की साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहन देने वाली नीति चल रही है। उस नीति को समाप्त करने के लिये कोई आन्दोलन नहीं उठाता।"

ज़हीर ने कहा—"सरकार साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहन कैसे दे रही है ?"

भुवन ने उत्तर दिया—"आप को नहीं दीखता, हमारे देश में बच्चों की शिक्षा साम्प्रदायिक होती है। स्कूल प्राय: किसी न किसी सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखते हैं और सरकार सबको आर्थिक सहायता देती है, बचपन से ही दृष्टिकोण

साम्प्रदायिक बना दिया जाता है।"

ज़हीर ने आपत्ति की—"सरकारी स्कूलों में किसी सम्प्रदाय की शिक्षा नहीं दी जाती।"

तप्पी बोला—"जरूर दी जाती है। सरकार सब सम्प्रदायों के लिये ग्राह्य, अस्पष्ट से ईश्वर की सत्ता में विश्वास की शिक्षा देती है। तुमने बच्चों की पढ़ायी जाने वाली बेसिक रीडरें देखी हैं? उन सब में सृष्टि, जीवों और मनुष्यों को बनाने वाले ईश्वर पर भरोसे का उपदेश दिया जाता है। ईश्वर के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न विश्वास ही तो सब सम्प्रदायों के बीज हैं। ईश्वर में विश्वास साम्प्रदायिक कल्पना के बिना नहीं रह सकता।"

ज़हीर हंस पड़—"आप को तो हर बात में अल्लाह-ईश्वर से ही झगड़ा करना है।"

तप्पी बोला—"भाई जान, हमें ईश्वर से झगड़ा नहीं करना बल्कि ईश्वर के नाम पर होने वाला झगड़ा रोकना है।"

सुरेश उत्तेजना से बोला—"ईश्वर विश्वास यदि सम्प्रदायों का मूल है तो नास्तिकता भी एक सम्प्रदाय है। सरकारी स्कूलों में नास्तिकता की शिक्षा बच्चों को क्यों दी जाये?"

जहीर ने सुरेश का समर्थन किया—"बिलकुल सही है। वैज्ञानिक शिक्षा का अर्थ नास्तिकता की शिक्षा नहीं है। विज्ञान ईश्वर के अस्तित्व को प्रमाणित नहीं करता परन्तु विज्ञान यह भी प्रमाणित नहीं करता कि ईश्वर नहीं है। आप सरकार से नास्तिकता के प्रचार की मांग नहीं कर सकते।"

भुवन ने सुनने के लिये संकेत किया—"नास्तिकता के प्रचार की मांग कोई नहीं करता। विज्ञान न ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करता है, न उससे इन्कार करता है। वैज्ञानिक शिक्षा पद्धति को ईश्वर के होने या न होने के सम्बन्ध में शिक्षा देने का उत्तरदायित्व लेने की आवश्यकता नहीं है। ईश्वर के सम्बन्ध में हम प्रामाणिक रूप से कुछ नहीं कह सकते तो इस झगड़े में क्यों पड़ें? सृष्टि, संसार, समाज और नैतिकता हमारे लिये यथार्थ हैं। इनके सम्बन्ध में विज्ञान प्रमाणित दृष्टिकोण देता है। सेक्यूलर राष्ट्रों में बच्चों की शिक्षा उसी यथार्थ-वादी दृष्टिकोण से आरम्भ होनी चाहिये। सेक्यूलर समाज को आस्तिकता-नास्तिकता के विवाद में पड़ने की आवश्यकता नहीं है।"

तप्पी बोल पड़ा—"जो बात प्रमाणित नहीं है, उसके विषय में क्यों कुछ

कहा जाये । पहले आप बच्चों को विश्वास दिलाते हैं कि इस संसार को ईश्वर ने बनाया है । सुख-दुख, रोग-शोक, सफलता-असफलता उसके निर्णय और कृपा से होते हैं । बच्चों के नौजवान हो जाने पर उन्हें वैज्ञानिक शिक्षा देंगे । उन्हें सृष्टि और जीवों के विकास की प्रक्रिया का वैज्ञानिक दृष्टिकोण बतायेंगे । बचपन में सिखाया जाता है—दुख और रोगों में ईश्वर का भरोसा करो, जवान होकर वे सीखते हैं कि स्वस्थ रहने और रोगों से बचने के लिये मलेरिया, हैजे और क्षय के कीटाणुओं से बचो । ईश्वर की इच्छा और विधान से उत्पन्न हुये रोगों के कीटाणुओं का संहार करना समाज और मानवता की सेवा है । पहले बच्चों के मस्तिष्क पर भ्रम की तह जमाइये, फिर उसे धोने का प्रयत्न कीजिये । नवयुवक भौतिक-विज्ञान, रसायन-शास्त्र, जीव-विज्ञान और मानव-विज्ञान पढ़ते समय बौखला जाते हैं—वैज्ञानिक शिक्षा में उन्हें ईश्वर का हाथ कहीं दिखाई नहीं देता परन्तु बचपन में पाये संस्कारों के कारण सोचते हैं—ईश्वर है अवश्य । इन्हीं मिथ्या-विश्वासों को आप धार्मिक विश्वासों और धार्मिक शिक्षा की स्वतन्त्रता कहते हैं !"

देव बोला—"हमारे समाज में उल्टी प्रक्रिया चलती है । बचपन में लोगों को अंध-विश्वास और साम्प्रदायिकता सिखलाई जाती हैं और जवान हो जाने पर सहिष्णुता और असाम्प्रदायिक दृष्टिकोण का उपदेश दिया जाता है । जो शिक्षा-पद्धति वैज्ञानिक शिक्षा देना चाहती है, वही आरम्भ में ईश्वर की सत्ता में विश्वास जमाये, यह बहुत बड़ा अन्तरविरोध है ।

तप्पी फिर बोला—"जिन स्कूलों में बच्चों को साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से शिक्षा दी जाती है, उन्हें सरकारी अनुदान हर्गिज नहीं दिया जाना चाहिये । शिक्षा का आरम्भ यथार्थवादी, वैज्ञानिक और मानवीय दृष्टिकोण से होना चाहिये । सरकारी खर्च पर साम्प्रदायिक भ्रमों की नींव क्यों डाली जाय ? बच्चों को स्वतन्त्र विचार मानव ही क्यों न बनने दिया जाय !"

साहित्यिक गोष्ठी

भुवन के यहां कभी-कभी साहित्यिक गोष्ठी होती रहती है। उसका विचार है कि किसी भी कलात्मक रचना का उचित मूल्यांकन चार आदमियों की परख से, उसके गुण-दोष का विवेचन करने से ही हो सकता है। गलत बात सुन कर ही सही बात तक पहुंचने का संकेत मिल सकता है। बातों से बातों की परतें खुलती हैं।

भुवन के अनुरोध से देव भी गोष्ठी में आ जाता है। देव यूनीवर्सिटी में इतिहास का अध्यापक है। देव के लिहाज और अनुरोध से उमापति जी भी गोष्ठी में आ गये थे। उमापति जी जमे हुये नामवर लेखक हैं। वे गोष्ठी में आ जायें तो उदीयमान लेखकों का उत्साह और गोष्ठी का महत्व बढ़ जाता है परन्तु उमापति जी को ऐसी गोष्ठी का कोई उपयोग नहीं जान पड़ता। वे अपनी रचना गोष्ठी में नहीं पढ़ते। उन का विचार है कि वे नौसिखियों से कुछ सीख नहीं सकते। यदि वे किसी का सुझाव स्वीकार करें तो रचना में उन की मौलिकता क्या रहे! उन की कला की विशेषता तो दूसरों से अप्रभावित, उन की अपनी ही सूझ और अपनी अभिव्यक्ति के मौलिक ढंग में है। कला यदि सुझावों से ढांचों में ढाल कर बनायी जाये तो वह निर्देशन द्वारा 'मास प्रोडक्शन' की चीज़ हो जायेगी। ऐसी कला में कलाकार की स्वच्छन्द प्रतिभा अभिव्यक्त नहीं होगी।

मुन्नी कहानी पढ़ कर सुना रही थी तो उमापति जी सोफा-कुर्सी की पीठ पर लुढ़के हुये मुंह पर हाथ रख कर जम्हाइयां ले रहे थे।

मुन्नी ने गोष्ठी में पढ़ने से पहले कहानी तप्पी को सुना ली थी। तप्पी ने उस का साहस बढ़ाया था—बहुत अच्छी बन पड़ी है, इसे गोष्ठी में पढ़ना। मुन्नी कहानी पढ़ रही थी तो प्रसाद जी अंगूठा दांतों से दबाये बहुत ध्यान से सुन रहे

थे। दो श्रोताओं ने कहानी को अच्छी बता दिया तो प्रसाद जी को बोलना पड़ा—"इस रचना को एक अध्यापिका की घरेलू कठिनाइयों का वर्णन कहा जा सकता है, अध्यापिका के प्रति सहानुभूति हो सकती है परन्तु इस में कहानीपन क्या है ?"

एक 'नये' कहानी लेखक ने प्रसाद जी से प्रश्न किया—"कहानी आप किस रचना को कहेंगे ? समस्या को परिस्थितियों द्वारा घटना के रूप में उपस्थित किया जाये तो उसे कहानी नहीं कहियेगा ?"

तप्पी ने कहा—"यदि घटना के वर्णन से भावोद्रेक हो सके या चिन्तन की प्रेरणा मिल सके तो उसे सफल कहानी कह सकना चाहिये।"

प्रसाद जी के मित्र ने मुंह में छाली कुचलते हुये कह दिया—"कहानी तो है पर इस की अपील व्यापक नहीं। इस कहानी में क्या कलात्मकता है ?"

भुवन और देव ने एक साथ उमापति जी से अनुरोध किया—"आप कहिये, आप कुछ बताइये !"

उमापति जी ने घुटने को सहलाते हुये ऊंघ या विजया के प्रभाव से गुलाबी नेत्र झपक कर उत्तर दिया—"अरे हम क्या कहें, ठीक है, अच्छा प्रयत्न है।"

प्रसाद जी ने प्रतिष्ठित लेखक की बात अपनी राय के विरुद्ध जान पड़ने के कारण जिज्ञासा की—"प्रयत्न तो है परन्तु कहानी में कहानीपन होना चाहिये; वही वस्तु रस-बोध उत्पन्न कर सकती है। उसी के बल पर कहानी जम सकती है।"

मुन्नी गुमसुम सुनती जा रही थी। उस की ओर से तप्पी ने पूछ लिया—"कहानी के जम सकने का क्या मतलब ? इस कहानी में पत्नी ब्राह्म मुहूर्त से घर को झाड़ने-बुहारने, पति और बच्चों के लिये भोजन की व्यवस्था करने में व्यस्त हो जाती है। सात घंटे के लिये अध्यापिका का काम करने चली जाती है। लौट कर आते ही फिर बच्चों और पति की सेवा में व्यस्त हो जाती है। बच्चों और पति के सो जाने पर उन के कपड़े धोती है। स्कूल से लायी हुई कापियां देखने में व्यस्त हो जाती है। वह अपने ग्रेजुएट पति की अपेक्षा पच्चीस रुपये अधिक कमाती है। इस पर भी वह पति की डांट-फटकार सुनती है क्योंकि पति स्वामी है। स्त्री पर परिवार की जिम्मेदारी पति की अपेक्षा अधिक है, वह पति की अपेक्षा अधिक कठिनाई झेलती है, अधिक परिश्रम करती है तथा अधिक कमाती है परन्तु गृहस्थ का स्वामी पति है। स्त्री दासी मात्र है। वास्तविकता और समाज की मान्यता में यह वैषम्य आप को ध्यान देने योग्य नहीं जान पड़ता ?"

प्रसादजी ने कहा—"ध्यान देने योग्य तो है परन्तु पाठक को रसोद्रेक चाहिये।"

देव बोला—"जो ध्यान को, अनुभूति को पकड़ ले, वही रोचकता है अन्यथा सीता का विलाप भी आप को रोचक नहीं लगना चाहिये। रागात्मक अनुभूति उत्पन्न कर सकना ही साहित्य का गुण है।"

उमापति जी बोल पड़े—"यों चाहो तो हर टिप्पणी को कहानी मान लो।" और अपनी बात पर स्वयं ही हो-हो कर हंस दिये, "पर कहानी उसे ही कहना चाहिये, जिस के रस में व्यापकता हो, स्थायित्व हो, पाठक में निरन्तर समवेदना उत्पन्न कर सके, उसे मानसिक आनन्द दे सके।"

तप्पी ने पूछ लिया—"रस की व्यापकता, स्थायित्व और निरन्तर समवेदना से क्या अभिप्राय ?"

उमापति जी ने सतर्क होकर दोनों हाथ कुर्सी की बाहों पर दबा लिये और गुलाबी आंखों को पूरा खोल कर बोले—"रस की व्यापकता और स्थायित्व वर्ग विशेष को अपील करने वाले साहित्य में नहीं हो सकते। फ्रेंकली स्पीकिंग, यह कहानी वार्किंग वोमेन की कहानी है, उस की कठिनाइयों के लिये दुहाई है, वर्किंग क्लास की ही कहानी है। आप इस कहानी को प्रगतिवादी दृष्टिकोण से अच्छी कह सकते हैं परन्तु इसे स्थायी मूल्य की कहानी नहीं कहा जा सकता।"

भुवन ने झिझक कर सिर खुजाया और पूछ लिया—"प्रगतिवादी साहित्य स्थायी मूल्य का नहीं हो सकता ?"

उमापति जी ने विवाद से अनिच्छा के संकेत में हाथ हिला कर कहा—"वाद का साहित्य स्थायी नहीं हो सकता, न प्रगतिवाद का, न प्रतिक्रियावाद का। स्थायी साहित्य और कला मानवता के स्थायी और व्यापक मूल्यों का होता है, वर्गों का नहीं।"

प्रसाद जी ने उमापति जी का समर्थन किया—"बिलकुल ठीक, बिलकुल ठीक ! ठोस और स्थायी साहित्य मानवता की गहरी अनुभूतियों का होता है। तभी तो मनुष्य-मात्र उस से रस ले सकता है।"

देव उमापति जी के प्रति सम्मान में चुप था परन्तु प्रसाद जी से उस ने पूछ लिया—"मानव-मात्र से क्या अभिप्राय है ? ऐसा कौन मानव होगा जो किसी वर्ग में न हो ?"

उत्तर उमापति जी ने दिया—"वर्ग और वर्ग-संघर्ष तो आती-जाती चीजें

है। मानवता वर्गों से पूर्व भी थी।" उन्होंने भुवन की ओर हाथ बढ़ा कर कहा, "जब ये लोग समाज को श्रेणीहीन, वर्गहीन बना लेंगे तब भी मानवता रहेगी।"

भुवन उमापति जी के प्रति सम्मान के बावजूद चुप न रह सका, बोला— "क्षमा कीजिये, साहित्य यदि समाज की वास्तविकता का दर्पण है और समाज में वर्गों की समस्यायें हैं, तो साहित्य में उन की छाया अवश्य दिखाई देनी चाहिये।"

उमापति जी ने हाथ उठा कर निर्लिप्त भाव से कह दिया—"बेशक ! आप वर्गों की समस्यायें साहित्य में दिखाइये परन्तु ऐसा साहित्य कला नहीं होगा, प्रचार होगा। वह स्थायी मूल्य का साहित्य नहीं होगा।

भुवन विनय से मुस्कराया—"उमापति जी, प्रचार से क्या अभिप्राय है ? विचारों की अभिव्यक्ति को ही प्रचार कहा जाये तो सम्पूर्ण उत्कृष्ट साहित्य को प्रचारात्मक मानना होगा।"

उमापति जी के स्वर में कुछ उत्तेजना आ गयी—"कैसे मानना होगा ? हाथ कंगन को आरसी क्या ! तुम्हारे सामने टैगोर का साहित्य है। उसे प्रचार का साहित्य कह सकते हो ?"

शेष लोगों को कुछ सोचते देख कर मुन्नी ने साहस किया—"कवि रवीन्द्र की रचनाओं को पढ़ कर हमें सदा जागृति की, मानव सहृदयता की, दमन के विरोध की प्रेरणा मिलती है।"

उमापति जी ने बड़प्पन से स्वीकार किया—"प्रेरणा मिलनी एक बात है, वही तो साहित्य और कला का गुण है परन्तु स्पष्ट प्रचार, नारेबाजी अथवा प्रचार के प्रयोजन से ही रचना करना—जैसी रचना प्रगतिवादी कवि और लेखक करते हैं, उस को कला और साहित्य नहीं कहा जा सकता।"

भुवन ने उमापति जी से पूछा—"'गोरा' के बारे में, रवि बाबू के दूसरे उपन्यासों के बारे में आप की क्या राय है ? गोरा में उन्होंने वर्णाश्रम की जन्मजात विशिष्टता के निर्मूल अहंकार पर कितना भयंकर प्रहार किया है ! उन के अन्य उपन्यासों में भी सामाजिक रूढ़ियों और रूढ़िगत मान्यताओं की व्यर्थता के प्रति संकेत है।"

प्रसाद जी ने विस्मय प्रकट किया—"आप भी क्या बात करते हैं ? कहां राजा भोज और कहां गंगू तेली ! आप आजकल के प्रगतिवादियों की उच्छृङ्खलता की सफाई टैगोर के उदाहरण से देना चाहते हैं ?"

"वाह ! वाह !" उमापति जी ने प्रसाद जी का उत्साह बढ़ाया।

प्रसाद जी ने और भी कहा--"टैगोर ने कला और साहित्य को प्रचार के स्तर पर कभी नहीं गिराया। उन्होंने अपने साहित्य को कला के स्तर पर सर्वमान्य रखा। गीतांजलि को आप क्या कहेंगे ? उसमें भी आप को प्रचार दिखायी देता है ? वह तो सदाशिव तत्व है।"

भुवन ने होठों पर हाथ रख लिया परन्तु तप्पी ने उसकी मुस्कान ताड़ ली और बोला--"रहस्यवादी आस्था रखने वालों के लिये ही गीतांजलि में सदाशिव तत्व है। भौतिक प्रमाणों की साक्षी के आधार पर तर्क और चिंतन करने वाले को उससे ऊब भी हो सकती है। जीवन को वास्तविकता के स्तर पर देखने वालों को उसमें पलायनवाद दिखायी दे सकता है।"

उमापति जी ने तप्पी को डांट दिया—"अमां, छोटे मुंह बड़ी बात। तुम्हें गीतांजलि में पलायनवाद दिखाई देता है; योरुप के लोग बेवकूफ थे जिन्होंने गीतांजलि पर नोबल प्राइज़ दे दिया ?"

तप्पी ने चुनौती पा गर्दन ऊंची कर ली—"नोबल प्राइज़ की बात आप जाने दीजिये। इधर जैसी रचनाओं पर नोबल प्राइज़ मिला है, आप उन्हें स्वयं गुड सेकेन्ड क्लास कह चुके हैं। योरुप में भी पलायनवादी हैं और जीवन में संघर्ष देख कर वे अपने आप में डुबकी लगा कर शान्ति पाने के विश्वास से मोहित हो सकते हैं।"

प्रसाद जी ने प्रश्न किया—"अपने आप में डुबकी लगाने का क्या मतलब ?

देव हंसा—"अशास्त्रीय भाषा में अद्वैत और आध्यात्मवाद को क्या कहियेगा ?"

तप्पी ने कहा—"हमारे लिये तो रवि बाबू के उसी साहित्य का मूल्य अधिक है जिसने हमें अपना मनुष्यत्व प्राप्त करने की प्रेरणा दी है। वह वस्तु हमें उनके रहस्यवाद में नहीं, बल्कि उनके सामाजिक और राजनीतिक तत्वों में मिलती है।"

देव फिर बोला—"रवि बाबू की रचनाओं में सामाजिक तत्वों का यद्यपि आज विरोध नहीं होता, परन्तु उन रचनाओं के प्रथम प्रकाशन के समय परम्परावादी लोगों ने उनसे चोट अनुभव की थी।"

"होगा", प्रसाद जी ने असंतोष प्रकट किया, "परन्तु रवि ठाकुर की रचनाओं में वर्ग-संघर्ष और प्रचार तो कहीं नहीं है।"

भुवन ने पूछ लिया—"उस समय देश में वर्ग-संघर्ष की भावना थी ही कहां ? रवि बाबू की कविता 'पुरातन भृत्य' देखिये !"

मुन्नी ने भी कहा—"रवि बाबू की सभी रचनाओं में नारी पर सामाजिक अन्याय के प्रति संकेत हैं। उन्होंने परदे के बंधन से मुक्ति, स्त्री-शिक्षा, विधवा विवाह आदि के समर्थन द्वारा नारी को उठाने का यत्न किया है।"

उमापति जी की आंखें अधिक गुलाबी हो गयीं—"रवि बाबू नारी का दमन दूर करने के लिये सहानुभूति प्रकट करते थे। पति के मालिक होने पर आपत्ति नहीं करते थे।"

देव ने देखा, मुन्नी ने मन को घोंटने के लिये घूंट भर लिया था इसलिये उसे बोलना पड़ा—"रवि बाबू के समय की नारी पुरुष से सहृदयता पाकर संतुष्ट हो सकती थी, क्योंकि तब तक समाज उसे रक्षणीया कह कर पाल सकता था। आज समाज, नारी पर समाज को पुरुष के समान ही चलाने का आर्थिक उत्तरदायित्व भी डाल रहा है तो कहानी लेखिका के समाज की नारी पुरुष को सहयोगी न मानकर स्वामी कैसे मान ले ? रवि बाबू ने हमारे राष्ट्रीय और सामाजिक उत्थान और मानवीय समता के विकास के जिस पौधे को सींचना आरम्भ किया था, क्या वह तब से और नहीं बढ़ा है ?"

देव को आशा थी कि साहित्य और कला को सामाजिक हित का साधन बनाने में रवि बाबू की नज़ीर दे देने के बाद उस के तर्क का जवाब नहीं रहेगा परन्तु ऐसा नहीं हुआ।

उमापति जी का हाथ उत्तेजना से ऐसे चल गया कि तप्पी यदि बहुत समीप होता तो उसके नाक या होठों को कुछ क्षति पहुंच सकती थी। वे बोले—"अरे, राष्ट्रीय और सामाजिक उत्थान ही करना है तो 'सर्वोदयी' आन्दोलन चलाइये या अपना 'मार्क्सवाद' चलाइये। बुद्ध, मार्क्स, गांधी और लेनिन की तरह सिद्धान्तों के पथ और वाद चलाइये। साहित्य तो रस की वस्तु है, वाद-विवाद और आन्दोलन की वस्तु नहीं ! साम्राज्य और समाजवाद तो आते-जाते रहते हैं। वे इतिहास के चंचल चरण हैं। साहित्य शाश्वत रस है। साहित्य समस्याओं की बात नहीं, समस्या तो किसी के लिये मान्य और किसी के लिये अमान्य होगी परन्तु साहित्य सर्वमान्य होता है।"

तप्पी प्रतिष्ठित साहित्यिक की अधिकार पूर्ण ध्वनि से परास्त नहीं हुआ। उसने पूछ लिया—"आप ऐसे किसी साहित्यिक का उदाहरण तो दीजिये !"

उमापति जी की मुद्रा रौद्र हो गई। आक्रोश से गर्दन तिरछी करके उन्होंने फटकार दिया—"तुम्हें क्या उदाहरण दें, तुम ने कुछ पढ़ा भी है ? तुम साइंस वाले साहित्य क्या जानो ? कालिदास को पढ़ो, भवभूति को पढ़ो, तुलसी को पढ़ो। शेक्सपियर, मिल्टन, दांते, गेटे·····।" वे कई नाम लेते चले गये।

"और क्या ! और क्या !" प्रसाद जी ने ऊंचे स्वर में समर्थन किया, "शाश्वत सौन्दर्य ही वास्तविक साहित्य है। सहस्रों वर्ष बीत गये परन्तु उस के रस में क्षीणता नहीं आयी।"

तप्पी उमापति जी की भवों की उठान से चुटिया गया था। उस ने भी गर्दन सीधी कर ली—"कालिदास के ग्रंथों में क्या शाश्वत सौंदर्य और रस है ?"

तप्पी की इस उद्दण्डता से उमापति जी और प्रसाद जी की आंखें और होंठ खुले रह गये।

देव ने समाधान के स्वर में कहा—"कालिदास के काव्य-रस की अमरता से कौन इनकार कर सकता है परन्तु साहित्य की परख पर मन:स्थिति और संस्कारों का भी प्रभाव पड़ता है।"

तप्पी ने कहा—"कालिदास के साहित्य-कौशल और उपमा-चातुर्य से इनकार नहीं किया जा सकता परन्तु प्रश्न सौन्दर्य और रस का है जो पाठक को अभिभूत कर देता है।"

उमापति जी ने मुस्कराकर हाथ उठा दिया—"अरसिकेषु च काव्य निवेदनं सिरसि मालिख, मालिख, मालिख (अरसिकों से रस की बात मत कहो, मत कहो, मत कहो)।" वे तप्पी को धराशायी कर देने के संतोष में ठहाका लगा-कर हंस पड़े।

भुवन आस्तीनों को ऊपर चढ़ा कर कुर्सी के किनारे पर खिसक आया मानों अखाड़े में उतरे बिना काम नहीं चलेगा। उस ने मुन्नी से पूछ लिया—"रघु की दिग्विजय का वर्णन कौन से सर्ग में है ?"

"चौथे सर्ग में।" मुन्नी ने उत्तर दिया।

भुवन ने कहा—"चौथे सर्ग में रघु का दिग्विजय वर्णन पढ़ने से आज के उस पाठक को क्या रस आयेगा जिसने 'युद्ध और शान्ति', 'पेरिस का पतन' आदि उपन्यासों में आधुनिक युद्धों के रोमांचकारी वर्णन पढ़ लिये हों ? इस के अतिरिक्त कालिदास ने जिन युद्धों की स्तुति की है, वे आत्मरक्षा अथवा देश की स्वतंत्रता के लिये नहीं लड़े गये थे। कालिदास ने रघु की बड़ाई की है।

कोई आवश्यकता न होने पर भी उस ने पड़ोसी राज्यों को रौंद डाला, राजाओं से उन के देश छीन लिये और फिर उन्हें अपमानित करके, उन से अपने चरण पुजवा कर उन के राज्य उन्हें लौटा दिये।"

भुवन ने उमापति जी की ओर देखा—"तो साहब, नादिरशाह ही क्या बुरा था ? आज के युग में जब हम पंचशील और संसार भर के राष्ट्रों के सह-अस्तित्व की बात करते हैं, किसी भी देश द्वारा पड़ोसी देश के सीमा अतिक्रमण की संसार भर में निन्दा होती है, तो कालिदास के काव्य में आपको क्या आदर्श और रस मिलेगा ? हमें तो रघुवंश से ज्यादा रस प्रेमचन्द की कहानियों—'कफ़न' और 'नमक के दारोगा' में मिलता है।"

देव ने टोका—"क्या आज की समस्याओं और नैतिकता की तराजू पर कालिदास के काव्य को तोलना अन्याय नहीं है ?"

तन्वी ने उस से पूछा—"आज की सामाजिक विषमताओं का समाधान चाहने वाले पाठक से रघु की दिग्विजय में रस लेने की आशा करना अन्याय नहीं है; उस में शाश्वत सौन्दर्य और साहित्य क्या है ?"

उमापति जी ने सोफा की बांह पर मुष्टिका प्रहार किया—"शाश्वत साहित्य सौन्दर्य और समवेदना है। समय चाहे जितना बदल जाये, मनुष्य की अनुभूतियां तो नहीं बदल जायेंगी !"

भुवन ने उमापति जी की ओर देख कर कहा—"अनुभूतियां जरूर वही रहती हैं परन्तु उन के सम्पर्क, स्रोत और माध्यम बदल जाते हैं।"

"इस का क्या मतलब ?" प्रसाद जी की आंखें फैल गईं।

भुवन ने कहा—"मतलब है कि कालिदास के समय जो प्रसंग वीर रस का उद्रेक या शृंगार का आवेग अथवा काम की अनुभूति उत्पन्न कर सकता था, वह आज के पाठक के मन में अरुचि या उबकाई ही पैदा करेगा।"

"धन्य है ! धन्य है ! आप की परिमार्जित रुचि आप को ही मुबारक हो !" प्रसाद जी बोल उठे, "तो फिर आप 'घेरे के बाहर,' 'लाल रेखा' जैसे साहित्य को ही सुरुचिपूर्ण कहियेगा ?"

"सुरुचिपूर्ण कहिये या अश्लील कहिये परन्तु आज का पाठक उसे स्वाभाविक समझ कर उस में रस जरूर ले सकता है।" देव ने कहा, "इसीलिये तो साधारण पाठक उस की ओर लपकता है और रघुवंश को संतोष के लिये शायद कोई नहीं पढ़ता।"

भुवन ने प्रसाद जी की ओर संकेत कर मुन्नी से पूछा—"क्या तुम इन के सामने रघुवंश से अग्निवर्ण के महलों की रंग-रेलियां पढ़ कर सुना सकती हो ?"

"नहीं, मैं तो नहीं पढ़ सकती ।" मुन्नी ने संकोच से इनकार कर दिया ।

प्रसाद जी ने पूछा—"आप को उस में क्या अश्लीलता लगती है ?"

भुवन बोला—"विकट अश्लीलता तो लगती ही है, उस के साथ ही आधुनिक समाज की रुचि और अभ्यास की दृष्टि से अस्वाभाविक भी लगता है ।"

"आखिर क्या अस्वाभाविक लगता है ?" प्रसाद जी ने पूछ लिया ।

उत्तर भुवन ने दिया—"अस्वाभाविक यह लगता है कि इस युग का विलासी से विलासी और उच्छृङ्खल से उच्छृङ्खल व्यक्ति भी एक कमरे में एक साथ चार स्त्रियों से रमण नहीं कर सकता । कालिदास रघुवंश के उन्नीसवें सर्ग में अग्नि-वर्ण के विलास-सुख का वर्णन करते हैं कि वह एक ही समय अनेक स्त्रियों से घिर कर रमण करता था । ऐसे रमण की कल्पना से तो शायद लखनऊ के नवाब वाजिदअलीशाह ही उत्साह और रस अनुभव कर सकते होंगे ।"

"क्यों, रियासतों का विलयन हो जाने से पूर्व हमारे राजे-नवाब क्या करते थे ? उन के हरमों में कितनी रानियां, बेगमें और रखेलें रहती थीं ?" देव ने पूछ लिया ।

"हां, राजा लोग ही ऐसा कर सकते थे । यह शृंगार और विलास का सामंती सौन्दर्य और आदर्श था । आधुनिक लोगों को तो यह निर्लज्जता की पराकाष्ठा ही लगेगी । उन्हें इस की कल्पना से ही पसीना आ जायेगा, मन मिचला जायेगा । उन्हें इस में रसानुभूति नहीं हो सकती । ऐसी रसानुभूति के लिये ठेठ सामन्ती संस्कारों की आवश्यकता है ।"

"यह तुम्हारी प्रगतिवादी आलोचना है !" उमापति जी क्षोभ से बोले, "तुम तथ्यों को विकृत शीशे से देखना चाहते हो । तुम्हें कालिदास में यही मिला, और कुछ नहीं ? तुम्हें शकुन्तला नहीं दिखाई देती ?"

तप्पी उमापति जी के चिढ़ाने पर तुल गया था, बोला—"आखिर शकुंतला में ऐसी क्या बात है ?"

उमापति जी ने अत्यन्त विरक्ति से हाथ हिला दिया परन्तु प्रसाद जी बोल उठे—"आप को शकुंतला में कुछ नहीं दीखता ? आप के पश्चिम के बड़े से बड़े कवि शकुंतला की कल्पना पर मोहित हैं । आप साहित्य को समझेंगे क्या !"

मुन्नी बोल पड़ी—"हमें तो शकुंतला का व्यवहार न तो स्वाभाविक लगता

है, न उस के प्रति रागात्मक सहानुभूति होती है ।"

उमापति जी और प्रसाद जी ने आंखें फैला कर मुन्नी के दुस्साहस पर विस्मय प्रकट किया तो मुन्नी को आंखें झुका कर अपनी बात पूरी करनी पड़ी— "जो पुरुष अपनी पत्नी को तो भूल सकता है परन्तु अपनी अंगूठी को नहीं, ऐसे पुरुष से तो नितांत आत्म-सम्मानहीन नारी ही प्रेम कर सकती है । जहां सम्मान नहीं, वहां प्रेम क्या ?"

प्रसाद जी बोल पड़े—"यह तुम क्यों भूल गई कि दुष्यंत शकुन्तला को दुर्वासा ऋषि के शाप के कारण भूल गया था ?"

मुन्नी ने उत्तर दिया—"भूली नहीं, दुर्वासा का शाप ही तो कालिदास की कल्पना है । महाभारत में भी शकुंतला की कथा है पर उस में दुर्वासा के शाप का उल्लेख नहीं है ।"

उमापति जी ने उत्साहित होकर कहा—"यही तो कालिदास का चमत्कार है कि उस ने दुष्यन्त की इतनी बड़ी हृदयहीनता को क्षम्य बना दिया ।"

तप्पी बोल पड़ा—"यह कहानी उन्हीं लोगों के लिये स्वाभाविक हो सकती है जो शाप की काल्पनिक शक्तियों में विश्वास करते हैं । आज कहानी लेखक शाप की घटना के आधार पर कहानी लिख दे तो आप उस कहानी को स्वाभाविक कहियेगा ? ऐसी कहानी पर आज लोग हंसेंगे । वास्तव में तो कालिदास ने इस कथानक द्वारा पतिव्रत धर्म का, पत्नी के लिये पुरुष की उच्छृङ्खलता दीनता से सह लेने का आदर्श उपस्थित किया है ।"

"वाह ! वाह !" उमापति जी ने विस्मय प्रकट किया, "आप को शकुंतला नाटक में भी प्रचार दिखायी देता है, तब तो आप की यथार्थवादी दृष्टि की महिमा है !"

"प्रचार न कहिये, एक आदर्श तो है ही ।" देव ने मुस्कराकर कहा ।

"हां, आदर्श हम मान सकते हैं ।" उमापति जी ने गर्दन हिलायी ।

तप्पी ने मुस्कान दबाकर विस्मय प्रकट किया—"आदर्श ही सही । आदर्श और उदाहरण प्रचार के लिये नहीं तो किस प्रयोजन से उपस्थित किये जाते हैं ?"